'भारतीय पुस्तकमाला' के अन्तर्गत पहली किताब

प्रेमचन्द की अमर कृति

कायाकल्प

पहला भाग

बनारस

सरस्वती प्रेस

चतुर्थ संस्करण

इस माला के अन्तर्गत द्वितीय संस्करण

जनवरी, १९४१

मूल्य—आठ आना

सरस्वती-प्रेस, बनारस कैंट में

श्रीपतराय द्वारा मुद्रित।

काया कल्प

[भाग : १]

कायाकल्प

१

दोपहर का समय था, पर चारों तरफ़ अँधेरा था। आकाश मे तारे छिटके हुए थे। ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था, मानो ससार से जीवन का लोप हो गया हो। हवा भी बंद हो गई थी। सूर्यग्रहण लगा हुआ था। त्रिवेणी के घाट पर यात्रियों की भीड थी, ऐसी भीड, जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। वे सभी हिन्दू, जिनके दिल मे श्रद्धा और धर्म का अनुराग था, भारत के हरएक प्रांत से इस महान् अवसर पर त्रिवेणी की पावन धारा मे अपने पापों का विसर्जन करने के लिए आ पहुँचे थे, मानो उस अँधेरे मे भक्ति और विश्वास ने अधर्म पर छापा मारने के लिए अपनी असंख्य सेना सजाई हो। लोग इतने उत्साह से त्रिवेणी के सकरे घाट की ओर गिरते-पडते, लपके चले जाते थे कि यदि जल की शीतल धारा की जगह अग्नि का जलता हुआ कुण्ड होता, तो भी लोग उसमें कूदते हुए ज़रा भी न झिझकते!

कितने आदमी कुचल गये, कितने डूब गये, कितने खो गये, कितने अपग हो गये, इसका अनुमान करना कठिन है। धर्म का विकट संग्राम था। एक तो सूर्यग्रहण, उस पर यह असाधारण और अद्‌भुत प्राकृतिक छटा! सारा दृश्य धार्मिक वृत्तियों को जगानेवाला था।

दोपहर को तारो का प्रकाश माया के परदे को फाडकर आत्मा को आलोकित करता हुआ मालूम होता था। वैज्ञानिको की बात जाने दीजिये, पर जतता मे न-जाने कितने दिनो से यह विश्वास फैला हुआ था कि तारागण दिन को कही किसी सागर मे डूब जाते है। आज वही तारागण आंखो के सामने चमक रहे थे। फिर भक्ति क्यो न जाग उठे! सद्वृत्तियों क्यो न आंखें खोल दें!

घण्टे-भर के बाद फिर प्रकाश होने लगा, तारागण फिर अदृश्य हो गये, सूर्य भगवान् की समाधि टूटने लगी।

यात्रीगण अपने-अपने पापो की गठरियॉ त्रिवेणी मे डाल-डालकर जाने लगे। संध्या होते-होते घाट पर सन्नाटा छा गया। हॉ, कुछ घायल, कुछ अधमरे प्राणी जहॉ-तहॉ पडे कराह रहे थे और ऊँचे करार से कुछ दूर एक नाली मे पडी तीन-चार साल की एक लडकी चिल्ला-चिल्लाकर रो रही थी।

सेवा-समितियो के युवक, जो अब तक भीड को सॅभालने का विफल प्रयत्न कर रहे थे, अब डोलियॉ कंधो पर ले-लेकर घायलो और भूले-भटको की खबर लेने आ पहुँचे। सेवा और दया का कितना अनुपम दृश्य था।

सहसा एक युवक के कानो मे बालिका के रोने की आवाज़ पडी। अपने साथी से बोला—यशोदा, उधर कोई लडका रो रहा है!

यशोदा—हॉ, मालूम तो होता है। इन मूर्खों को कोई कैसे समझाये कि यहॉ बच्चो को लाने का काम नही! चलो, देखें।

दोनो ने उधर जाकर देखा, तो एक बालिका नाली मे पडी रो रही है। गोरा रङ्ग था, भरा हुआ शरीर, बडी-बडी ऑखे, गोरा मुखडा, सिर से पॉव तक गहनो से लदी हुई। किसी अच्छे घर की लडकी थी। रोते-रोते उसकी ऑखे लाल हो गई थी। इन दोनो युवको को देखकर वह डरी और चिल्लाकर रो पडी। यशोदा ने उसे गोद मे उठा लिया और प्यार करके बोले—बेटी, रो मत, हम तुझे तेरी अम्मॉ के घर

पहुँचा देंगे। तुझी को खोज रहे थे। तेरे बाप का क्या नाम है?

लड़की चुप तो हो गई; पर संशय की दृष्टि से देख-देख सिसक रही थी। इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सकी।

यशोदा ने फिर चुमकारकर पूछा—बेटी, तेरा घर कहाँ है?

लड़की ने कोई जवाब न दिया।

यशोदा—अब बताओ महमूद, क्या करें?

महमूद एक अमीर मुसलमान का लड़का था। यशोदानंदन से उसकी बड़ी दोस्ती थी। उनके साथ वह भी सेवा-समिति में दाखिल हो गया था। बोला—क्या बताऊँ। कैंप में ले चलो, शायद कुछ पता चले।

यशोदा—अभागे जरा-जरा-से बच्चों को लाते हैं और इतना भी नहीं करते कि उन्हें अपना नाम और पता तो याद करा दें।

महमूद—क्यों बिटिया, तुम्हारे बाबूजी का क्या नाम है?

लड़की ने धीरे से कहा—बाबूजी!

महमूद—तुम्हारा घर इसी शहर में है कि कहीं और?

लड़की—मैं तो बाबूजी के साथ रेल पर आई थी!

महमूद—तुम्हारे बाबूजी क्या करते हैं?

लड़की—कुछ नहीं करते।

यशोदा—इस वक्त अगर इसका बाप मिल जाय, तो सच कहता हूँ, बिना मारे न छोड़ूँ। बच्चा, गहने पहनाकर लाये थे, जाने कोई तमाशा देखने आये हों!

महमूद—और मेरा जी चाहता है कि तुम्हें पीटूँ। मियाँ-बीबी यहाँ आये, तो बच्चे को किस पर छोड़ आते? घर में और कोई न हो तो?

यशोदा—तो फिर उन्हीं को यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी?

महमूद—तुम atheist हो, तुम क्या जानो कि सच्चा मज़हबी जोश किसे कहते हैं?

यशोदा—ऐसे मज़हबी जोश को दूर ही से सलाम करता हूँ। इस वक्त दोनो मियाँ-बीवी बैठे हाय-हाय कर रहे होंगे।

महमूद—कौन जाने, वे भी यहीं कुचल-कुचला गये हो।

लडकी ने साहरा कर कहा—तुम हमे घल पहुँचा दोगे? बाबूदी तुमको पैछा देंगे!

यशोदा—अच्छा बेटी, चलो तुम्हारे बाबूदी को खोजें।

दोनो मित्र बालिका को लिये हुए केम्प मे आये; पर यहाँ कुछ पता न चला। तब दोनो उस तरफ गये जहाँ मैदान मे बहुत-से यात्री पडे हुए थे। महमूद ने बालिका को कन्धे पर बैठा लिया और यशोदा-नंदन चारो तरफ चिल्लाते फिरे—यह किसकी लडकी है? किसी की लडकी तो नही खो गई है? यह आवाजे सुनकर कितने ही यात्री 'हाँ-हाँ, कहाँ-कहाँ' करके दौडे, पर लडकी को देखकर निराश लौट गये।

चिराग़-जले तक दोनो मित्र घूमते रहे। नीचे-ऊपर, किले के आस-पास, रेल के स्टेशन पर, अलोपी देवी के मंदिर की तरफ यात्री-ही-यात्री पडे हुए थे, पर बालिका के माता-पिता का कहीं पता न चला। आख़िर निराश होकर दोनो आदमी केम्प लौट आये।

दूसरे दिन समिति के और कई सेवको ने फिर पता लगाना शुरू किया। दिन-भर दौडे, सारा प्रयाग छान मारा, सभी धर्मशालाओ की ख़ाक छानी; पर कही पता न चला।

तीसरे दिन समाचार-पत्रो मे नोटिस दिया गया और दो दिन वहाँ और रहकर समिति आगरे लौट गई। लडकी को भी अपने साथ लेती गई। उसे आशा थी कि समाचार-पत्रो से शायद सफलता हो। जब समाचार-पत्रो से कुछ पता न चला, तो विवश होकर कार्यकर्ताओ ने उसे वही के अनाथालय मे रख दिया। महाशय यशोदानन्दन ही उस अनाथालय के मैनेजर थे।

२

बनारस मे महात्मा कबीर के चौरे के निकट मुंशी वज्रधरसिह का मकान है। आप हैं तो राजपूत, पर आप अपने को 'मुंशी' लिखते और कहते हैं। 'मुंशी' की उपाधि से आपको बहुत प्रेम है। 'ठाकुर' के साथ आपको गॅवारपन का बोध होता है, इसलिए हम भी आपको मुंशीजी कहेंगे। आप कई साल से सरकारी पेंशन पाते हैं। बहुत छोटे पद से तरक्की करते-करते आपने अन्त में तहसीलदारी का उच्च पद प्राप्त कर लिया था। यद्यपि आप उस महान् पद पर तीन मास से अधिक न रहे और उतने दिन भी केवल एवज पर रहे; पर आप अपने को 'साबिक तहसीलदार' लिखते थे और मुहल्लेवाले भी, उन्हें खुश करने को 'तहसीलदार साहब' ही कहते थे। यह नाम सुनकर आप खुशी से अकड जाते थे, पर पेंशन केवल २५) मिलती थी, इसलिए तहसील-दार साहब को बाज़ार-हाट खुद ही करना पडता था। घर मे चार प्राणियो का खर्च था। एक लडकी थी, एक लडका और स्त्री। लडके का नाम चक्रधर था। वह इतना ज़हीन था कि पिता के पेंशन के ज़माने मे जब घर से किसी प्रकार की सहायता न मिल सकती थी, केवल अपने बुद्धि-बल से उसने एम्० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली थी। मुंशीजी ने पहले ही से सिफ़ारिश पहुँचानी शुरू की थी। दरबार-दारी की कला मे वह निपुण थे। हुक्काम को सलाम करने का उन्हें मरज़ था। हाकिमों के दिये हुए सैकडो प्रशंसापत्र उनकी अतुल संपत्ति थे। उन्हें वह बडे गर्व से दूसरो को दिखाया करते थे। कोई नया हाकिम आये, उससे ज़रूर रब्त-ज़ब्त कर लेते थे। हुक्काम ने चक्रधर का ख़याल करने के वादे भी किये थे; लेकिन जब परीक्षा का नतीजा निकला और मुंशीजी ने चक्रधर से कमिश्नर के यहाँ चलने को कहा, तो उन्होंने जाने से साफ इन्कार किया।

मुंशीजी ने त्योरी चढ़ाकर पूछा—क्यों ? क्या घर-बैठे तुम्हें नौकरी मिल जायगी ?

चक्रधर—मेरी नौकरी करने की इच्छा नहीं है।

वज्रधर—यह ख़ब्त तुम्हें कब से सवार हुआ ? नौकरी के सिवा और करोगे क्या ?

चक्रधर—मैं आज़ाद रहना चाहता हूँ।

वज्रधर—आज़ाद रहना था, तो एम्० ए० क्यों पास किया ?

चक्रधर—इसीलिए कि आज़ादी का महत्त्व समझूँ।

उस दिन से पिता और पुत्र में आये-दिन बमचख़ मचती रहती थी। मुंशीजी बुढ़ापे में भी शौक़ीन आदमी थे। अच्छा खाने और अच्छा पहनने की इच्छा अभी तक बनी हुई थी। अब तक इसी ख़याल से दिल को समझाते थे कि लड़का नौकर हो जायगा, तो मौज करेंगे। अब लड़के का रङ्ग देखकर बार-बार झुँझलाते और उसे कामचोर, घमंडी, मूर्ख कहकर अपना गुस्सा उतारते रहते थे। अभी तुम्हें कुछ नहीं सूझती, जब मैं मर जाऊँगा तब सूझेगी। तब सिर पर हाथ रखकर रोओगे। लाख बार कह दिया बेटा, यह ज़माना ख़ुशामद और सलामी का है। तुम विद्या के सागर बने बैठे रहो, कोई सेंत भी न पूछेगा। तुम बैठे आज़ादी का मज़ा उठा रहे हो और तुम्हारे पीछेवाले बाज़ी मारे जाते हैं। वह ज़माना लद गया, जब विद्वानों की क़द्र थी, अब तो विद्वान् टके सेर मिलते हैं, कोई बात तक नहीं पूछता। जैसे और सभी चीजें बनाने के कारख़ाने खुल गये हैं, उसी तरह विद्वानों के कारख़ाने हैं, और उनकी संख्या हर साल बढ़ती जाती है।

चक्रधर पिता का अदब करते थे, उनका जवाब तो न देते ; पर अपना जीवन सार्थक बनाने के लिए उन्होंने जो मार्ग तय कर लिया था, उससे न हटते थे। उन्हें यह हास्यास्पद मालूम होता था कि आदमी केवल पेट पालने के लिए आधी उम्र पढ़ने में लगा दे। अगर पेट पालना ही जीवन का आदर्श हो, तो पढ़ने की ज़रूरत ही क्या

है। मज़दूर एक अक्षर भी नहीं जानता, फिर भी वह अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट बड़े मज़े से पाल लेता है। विद्या के साथ जीवन का आदर्श कुछ ऊँचा न हुआ, तो पढ़ना व्यर्थ है। विद्या को जीविका का साधन बनाते उन्हें लज्जा आती थी। वह भूखों मर जाते, लेकिन नौकरी के लिए आवेदनपत्र लेकर कहीं न जाते। विद्याभ्यास के दिनों में भी वह सेवाकार्य मे अग्रसर रहा करते थे और अब तो इसके सिवा उन्हें और कुछ सूझता ही न था। दीनों की सेवा और सहायता में जो आनन्द और आत्मगौरव था, वह दफ़्तर में बैठकर कलम घिसने में कहां!

इस प्रकार दो साल गुजर गये। मुंशी वज्रधर ने समझा था, जब यह भूत इसके सिर से उतर जायगा, शादी-व्याह की फिक्र होगी, तो आप-ही-आप नौकरी की तलाश में दौड़ेगा! जवानी का नशा बहुत दिनों तक नहीं ठहरता, लेकिन जब दो साल गुजर जाने पर भी भूत के उतरने का कोई लक्षण न दिखाई दिया, तो एक दिन उन्होंने चक्रधर को खूब फटकारा—दुनिया का दस्तूर है कि पहले अपने घर में दिया जलाकर तब मसजिद में जलाते हैं। तुम अपने घर को अँधेरा रखकर मसजिद को रोशन करना चाहते हो। जो मनुष्य अपनों का पालन न कर सका, वह दूसरों की किस मुँह से मदद करेगा। मैं बुढ़ापे में खाने-कपड़े को तरसूँ और तुम दूसरों का कल्याण करते फिरो। मैंने तुम्हें पैदा किया, दूसरों ने नहीं, मैंने तुम्हें पाला-पोसा, दूसरों ने नहीं, मैं गोद में लेकर हकीम-वैद्यों के द्वार-द्वार दौड़ता फिरा, दूसरे नहीं। तुम पर सबसे ज्यादा हक मेरा है, दूसरों का नहीं।

चक्रधर अब पिता की इच्छा से मुँह न मोड़ सके। उन्हें अपने कॉलेज ही में कोई जगह मिल सकती थी। वहाँ सभी उनका आदर करते थे, लेकिन यह उन्हें मंजूर न था। वह कोई ऐसा धन्धा चाहते थे, जिससे थोड़ी देर रोज काम करके अपने पिता की मदद कर सकें। एक घण्टे से अधिक समय न देना चाहते थे। संयोग से जगदीशपुर

के दिवान ठाकुर हरिसेवक सिंह को अपनी लड़की को पढ़ाने के लिए एक सुयोग्य और सच्चरित्र अध्यापक की ज़रूरत पड़ी। उन्होंने कॉलेज के प्रधानाध्यापक को इस विषय मे एक पत्र लिखा। वेतन ३०) मासिक तक रखा। कॉलेज का कोई अध्यापक इतने वेतन पर राज़ी न हुआ। आखिर उन्होंने चक्रधर को उस काम पर लगा दिया। काम बडी जिम्मेदारी का था, किन्तु चक्रधर इतने सुशील, इतने गम्भीर इतने संयमी थे कि उन पर सबका पूरा विश्वास था।

दूसरे दिन से चक्रधर ने लडकी को पढाना शुरू कर दिया।

३

कई महीने बीत गये। चक्रधर महीने के अन्त में रुपए लाते और माता के हाथ पर रख देते। अपने लिए उन्हें रुपए की कोई ज़रूरत न थी। दो मोटे कुरतो पर साल काट देते थे। हॉ, पुस्तको से उन्हें रुचि थी, पर इसके लिए कॉलेज का पुस्तकालय खुला हुआ था। सेवाकार्य के लिए चंदो से रुपए आ जाते थे। मुन्शी वज्रधर का मुँह भी कुछ सीधा हो गया। डरे कि इससे ज्यादा दबाऊँ, तो शायद यह भी हाथ से जाय। समझ गये कि जब तक विवाह की बेडी पांव मे न पडेगी, यह महाशय काबू मे न आयेंगे। वह बेडी बनवाने का विचार करने लगे।

मनोरमा की उम्र अभी १३ वर्ष से अधिक न थी, लेकिन चक्रधर को उसे पढाते हुए बडी झेंप होती थी। वह यही प्रयत्न करते थे कि ठाकुर साहब की उपस्थिति ही मे उसे पढायें। यदि कभी ठाकुर साहब कही चले जाते, तो चक्रधर को महान् संकट का सामाना करना पडता था।

एक दिन चक्रधर इसी संकट में जा फँसे। ठाकुर साहब कहीं गये हुए थे। चक्रधर कुरसी पर बैठे; पर मनोरमा की ओर न ताककर द्वार की ओर ताक रहे थे, मानो वहाँ बैठते डरते हों। मनोरमा वाल्मीकीय रामायण पढ़ रही थी। उसने दो-तीन बार चक्रधर की ओर ताका; पर उन्हें द्वार की ओर ताकते देखकर फिर किताब देखने लगी। उसके मन मे सीता के वनवास पर एक शंका हुई थी और वह इसका समाधान करना चाहती थी। चक्रधर ने द्वार की ओर ताकते हुए पूछा—चुप क्यों बैठी हो, आजका पाठ क्यों नहीं पढ़तीं ?

मनोरमा—मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ आज्ञा हो तो पूछूँ ?

चक्रधर ने कातर भाव से कहा—क्या बात है ?

मनोरमा—रामचन्द्र ने सीताजी को घर से निकाला, तो वह चली क्यों गईं ?

चक्रधर—और क्या करती ?

मनोरमा—वह जाने से इन्कार कर सकती थीं। एक तो राज्य पर उनका अधिकार भी रामचन्द्र ही के समान था, दूसरे वह निर्दोष थी। अगर वह यह अन्याय न स्वीकार करती, तो क्या उन पर कोई आपत्ति हो सकती थी ?

चक्रधर—हमारे यहाँ पुरुष की आज्ञा मानना स्त्रियों का परमधर्म माना गया है। यदि सीताजी पति की आज्ञा न मानती, तो वह भारतीय सती के आदर्श से गिर जाती।

मनोरमा—यह तो मै जानती हूँ कि स्त्री को पुरुष की आज्ञा माननी चाहिये, लेकिन क्या सभी दशाओं में ? जब राजा से साधारण प्रजा न्याय का दावा कर सकती है, तो क्या उसकी स्त्री नहीं कर सकती ? जब रामचन्द्र ने सीता की परीक्षा ले ली थी और अन्त:करण से उन्हें पवित्र समझते थे, तो केवल झूठी निन्दा से वचने के लिए उन्हें घर से निकाल देना कहाँ का न्याय था ?

चक्रधर—राज-धर्म का आदर्श भी तो पालना करना था !

मनोरमा—तो क्या दोनो प्राणी जानते थे कि हम संसार के लिए आदर्श खडा कर रहे है ? इससे तो यह सिद्ध होता है कि वे कोई अभिनय कर रहे थे । अगर आदर्श भी मान लें, तो यह ऐसा आदर्श है, जो सत्य की हत्या करके पाला गया है । यह आदर्श नही है, चरित्र की दुर्बलता है । मै आप से पूछती हूँ, आप रामचन्द्र की जगह होते, तो क्या आप भी सीता को घर से निकाल देते ?

चक्रधर बडे असमंजस मे पडे । उनके मन मे स्वयं यही शंका और लगभग इसी उम्र मे पैदा हुई थी ; पर वह इसका समाधान न कर सके थे । अब साफ़-साफ़ जवाब देने की ज़रूरत पडी, तो बगलें झाँकने लगे ।

मनोरमा ने उन्हें चुप देखकर फिर पूछा—क्या आप भी उन्हें घर से निकाल देते ?

चक्रधर—नही, मै तो शायद न निकालता ।

मनोरमा—आप निन्दा की ज़रा भी परवा न करते ?

चक्रधर—नही, मै झूठी निन्दा की परवा न करता ।

मनोरमा की आँखें खुशी से चमक उठी, प्रफुल्लित होकर बोली—यही बात मेरे मन मे भी थी । मैने दादाजी से, भाईजी से, पंडितजी से, लौंगी अम्माँ से, भाभी से यही शंका की , पर सब लोग यही कहते थे कि रामचन्द्र तो भगवान् है, उनके विषय मे कोई शंका हो ही नहीं सकती । आपने आज मेरे मन की बात कही । मै जानती थी कि आप यही जवाब देंगे । इसीलिए मैने आपसे पूछा था । अव मै उन लोगों को खूब आडे हाथो लूँगी ।

उस दिन से मनोरमा को चक्रधर से कुछ स्नेह हो गया । पढने-लिखने से उसे विशेष रुचि हो गई । चक्रधर जो काम करने को दे जाते, उसे अवश्य पूरा करती । पहले की भाँति अब हीले-हवाले न करती । जब उनके आने का समय होता, तो वह पहले ही से आकर बैठ जाती

और उनका इंतजार करती। अब उसे उनसे अपने मन के भाव प्रकट करते हुए संकोच न होता। वह जानती थी कि कम-से-कम यहाँ उनका निरादर न होगा, उनकी हँसी न उड़ाई जायगी।

ठाकुर हरिसेवक सिंह की आदत थी कि पहले दो-चार महीनों तक तो नौकरों का वेतन ठीक समय पर दे देते, पर ज्यों-ज्यों नौकर पुराना होता जाता था, उन्हें उसके वेतन की याद भूलती जाती थी। उनके यहाँ कई नौकर ऐसे पड़े थे, जिन्होंने बरसों से वेतन नहीं पाया था। चक्रधर को भी इधर चार महीनों से कुछ न मिला था। न वह आप-ही-आप देते थे, न चक्रधर संकोच-वश माँगते थे। उधर घर में रोज तकरार होती थी। मुन्शी वज्रधर बार-बार तकाजे करते, झुँझलाते--माँगते क्यों नहीं ? क्या मुँह में दही जमाया हुआ है, या काम नहीं करते ! लिहाज भले आदमियों का किया जाता है। ऐसे लुच्चों का लिहाज़ नहीं किया जाता, जो मुफ्त में काम कराना चाहते हैं। आखिर एक दिन चक्रधर ने विवश हो ठाकुर साहब को एक पुरज़ा लिखकर अपना वेतन माँगा। ठाकुर साहब ने पुरजा लौटा दिया—व्यर्थ की लिखा-पढ़ी करने की उन्हें फ़ुरसत न थी और कहा—उनको जो कुछ कहना हो खुद आकर कहें। चक्रधर शरमाते हुए गये और बहुत कुछ शिष्टाचार के बाद रुपए माँगे। ठाकुर साहब हँसकर बोले—वाह बाबूजी वाह ! आप भी अच्छे मौजी जीव हैं चार महीनों से वेतन नहीं मिला और आपने एक बार भी न माँगा। अब तो आपके पूरे १२०) हो गये। मेरा हाथ इस वक्त तंग है। जरा दस-पाँच दिन ठहरिये। आपको महीने-महीने अपना वेतन ले लेना चाहिये था। सोचिये, मुझे एक मुश्त देने में कितनी असुविधा होगी ! खैर, जाइये दस-पाँच दिन में मिल जायँगे।

चक्रधर कुछ न कह सके। लौटे, तो मुख पर घोर निराशा छाई हुई थी। आज दादाजी शायद जीता न छोड़ेंगे। इस ख़याल से उनका दिल काँपने लगा। मनोरमा ने उनका पुरजा अपने पिता के पास ले

जाते हुए राह मे पढ लिया था। उन्हें उदास देखकर पूछा—दादाजी ने आपसे क्या कहा ?

चक्रधर उसके सामने रुपए-पैसे का जिक्र न करना चाहते थे। झेंपते हुए बोले--कुछ तो नही।

मनोरमा—आपको रुपए न दिये ?

चक्रधर का मुँह लाल हो गया। बोले—मिल जायँगे।

मनोरमा—आपको १२०) चाहिये न ?

चक्रधर—इस वक्त कोई ऐसी ज़रूरत नहीं है।

मनोरमा—ज़रूरत न होती, तो आप मांगते ही न ? दादाजी मे यह बडा ऐब है कि किसी के रुपए देते हुए उन्हें मोह लगता है। देखिये मै जाकर .

चक्रधर ने रोककर कहा—नही-नहीं, कोई ज़रूरत नहीं।

मनोरमा ने न माना। तुरत घर मे गई और एक क्षण मे पूरे रुपए लाकर मेज पर रख दिये, मानो कहीं गिने-गिनाये रखे हुए थे।

चक्रधर—तुमने ठाकुर साहब को व्यर्थ कष्ट दिया।

मनोरमा—मैने उन्हें कष्ट नही दिया। उनसे तो कहा भी नहीं। दादाजी किसी की ज़रूरत नही समझते। अगर अपने लिए अभी मोटर मॅगवानी हो तो तुरत मॅगवा लेगे, पहाडो पर जाना हो, तो तुरत चले जायँगे , पर जिसके रुपए आते है उसको न देगे।

वह तो पढने बैठ गई ; लेकिन चक्रधर के सामने यह समस्या आ पडी कि रुपए लूॅ, या न लूॅ। उन्होंने निश्चय किया, न लेना चाहिये। पाठ हो चुकने पर वह उठ खडे हुए और बिना रुपए लिए बाहर निकल आये। मनोरमा रुपए लिये हुए पीछे-पीछे बरामदे तक आई। बार-बार कहती रही—इसे आप लेते जाइये, जब दादाजी दे, तो मुझे लौटा दीजियेगा। पर चक्रधर ने एक न सुनी और जल्दी से बाहर निकल गये।

४

चक्रधर डरते हुए घर पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि द्वार पर चारपाई पडी हुई है, उस पर कालीन बिछी हुई है और एक अधेड उम्र के महाशय उस पर बैठे हुए हैं। उनके सामने ही एक कुरसी पर मुंशी वज्रधर बैठे फर्शी पी रहे थे और नाई खडा पंखा झल रहा था। चक्रधर के प्राण सूख गये। अनुमान से ताड गये कि यह महाशय वर की खोज में आये हैं। निश्चय करने के लिए घर मे जाकर माता से पूछा, तो अनुमान सच्चा निकला। बोले—दादाजी ने इनसे क्या कहा ?

निर्मला ने मुस्कराकर कहा—नानी क्यो मरी जाती है, क्या जन्म-भर क्वाँरे ही रहोगे ? जाओ बाहर बैठो, तुम्हारी तो बडी देर से जोहाई हो रही है। आज क्यो इतनी देर लगाई ?

चक्रधर—यह हैं कौन ?

निर्मला—आगरे के कोई वकील हैं, मुन्शी यशोदानन्दन।

चक्रधर—मै तो घूमने जाता हूँ। जब यह यमदूत चला जायगा, तो आऊँगा।

निर्मला—वाह रे शरमीले ! तेरा-सा लडका तो देखा ही नहीं। आ, जरा सिर में तेल डाल दूँ, बाल न-जाने कैसे बिखरे हुए हैं। साफ़ कपडे पहनकर जरा देर के लिए बाहर जा बैठ।

चक्रधर—घर में भोजन भी है कि व्याह ही कर देने का जी चाहता है। मै कहे देता हूँ, विवाह न करूँगा, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। किन्तु स्नेहमयी माता कब सुननेवाली थी। उसने उन्हे जबरदस्ती पकडकर सिर मे तेल डाल दिया, सन्दूक से एक धुला हुआ कुरता निकाल लाई और यो पहनाने लगी, जैसे कोई बच्चे को पहनाये। चक्रधर ने गरदन फेर ली।

निर्मला—मुझसे शरारत करेगा, तो मार बैठूँगी। इधर ला सिर। क्या जन्म-भर छूटे साँड बने रहने का जी चाहता है ? क्या मुझसे

मरते दम तक चूल्हा-चक्की कराता रहेगा ! कुछ दिन तो बहू का सुख उठा लेने दे !

चक्रधर—तुमसे कौन कहता है भोजन बनाने को ! मै कल से बना दिया करूँगा। मंगला को क्यों छोड रखा है ?

निर्मला—अब मै मारनेवाली ही हूँ। कभी नही मारा, पर आज पीट चलूँगी, नही जाकर चुपके से बाहर बैठ !

इतने मे मुंशीजी ने पुकारा—नन्हे, क्या कर रहे हो, ज़रा यहाँ तो आओ। चक्रधर के रहे-सहे होश भी उड गये। बोले—जाता तो हूँ; लेकिन कहे देता हूँ, मै यह जुआ गले मे न डालूँगा ! जीवन में मनुष्य का यही काम नही है कि विवाह कर ले, बच्चों का बाप बन जाय और कोल्हू के बैल की तरह आंखो पर पट्टी बॉधकर गृहस्थी मे जुत जाय।

निर्मला—सारी दुनिया जो करती है, वही तुम्हें भी करना पडेगा, मनुष्य का जन्म और होता ही किस लिए है ?

चक्रधर—हज़ारो काम है।

निर्मला—रुपये आज भी नही लाये क्या ? कैसे आदमी है कि चार-चार महीने हो गये, रुपये देने का नाम ही नहीं लेते। जाकर अपने दादा को किसी बहाने से भेज दो। कहीं से जाकर रुपये लाये। कुछ दावत-आवत का सामान तो करना ही पडेगा, नहीं तो कहेंगे कि नाम बडे और दर्शन थोडे।

चक्रधर बाहर आये, तो मुंशी यशोदानन्दन ने खडे होकर उन्हें छाती से लगा लिया और कुरसी पर बैठाते हुए बोले—अब की 'सरस्वती' मे आपका लेख देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। इस वैमनस्य को मिटाने के आपने जो उपाय बताये है, वे बहुत ही विचार-पूर्ण है।

इस स्नेह-मृदुल आलिंगन और सहृदयता-पूर्ण आलोचना ने चक्रधर को मोहित कर लिया ! वह कुछ जवाब देना ही चाहते थे कि

मुन्शी वज्रधर बोल उठे—आज बहुत देर लगा दी। राजा साहब से कुछ बातचीत होने लगी क्या ? (यशोदानन्दन से) राजा साहब की इनके ऊपर बडी कृपा है। बिलकुल लडकों की तरह मानते हैं। इनकी बातें सुनने से उनका जी ही नहीं भरता (नाई से) देख, चिलम बदल दे और जाकर भिनकू से कह दे, सितार-वितार लेकर थोडी देर के लिए यहाँ आ जाय। इधर ही से गणेश के घर जाकर कहना, तहसीलदार साहब ने एक हांडी अच्छा दही मांगा है। कह देना दही ख़राब हुआ, तो दाम न मिलेंगे।

यह हुक्म देकर मुन्शीजी घर मे चले गये। उधर की फिक्र थी ; पर मेहमान को छोडकर न जा सकते थे। आज उनका ठाठ-बाट देखते ही बनता था। अपना अल्पकालीन तहसीलदारी के समय का आलपाके का चुग़ा निकाला था, उसी ज़माने की मंदील भी सिर पर थी। आँखों में सुरमा भी था, बालों मे तेल भी, मानो उन्हीं का व्याह होनेवाला है चक्रधर शरमा रहे थे कि यह महाशय इनके वेश पर दिल मे क्या कहते होंगे। राजा साहब की बात सुनकर तो वह गड-से गये।

मुंशीजी चले गये, तो यशोदानंदन बोले—अब आपका क्या करने का इरादा है ?

चक्रधर—अभी तो कुछ निश्चय नहीं किया है, हाँ, यह इरादा है कि कुछ दिनों आजाद रहकर सेवाकार्य करूँ।

यशोदा—इससे बढकर क्या हो सकता है। आप जितने उत्साह से समिति को चला रहे हैं, उसकी तारीफ़ नहीं की जा सकती। आप-जैसे उत्साही युवकों का ऊँचे आदर्शों के साथ सेवा-क्षेत्र मे आना जाति के लिए सौभाग्य की बात है। आपके इन्हीं गुणों ने मुझे आपकी ओर खींचा है। यह तो आपको मालूम ही होगा कि मैं किस इरादे से आया हूँ। अगर मुझे धन या जायदाद की परवा होती, तो यहाँ न आता। मेरी दृष्टि मे चरित्र का जो मूल्य है वह और किसी वस्तु का नहीं।

चक्रधर ने आँखें नीची करके कहा—लेकिन मैं तो अभी गृहस्थी

के बन्धन मे नही पडना चाहता । मेरा विचार है कि गृहस्थी मे फँसकर कोई तन-मन से सेवा-कार्य नही कर सकता ।

यशोदा—ऐसी बात तो नही । इस वक्त भी जितने आदमी सेवा-कार्य कर रहे है, प्राय. सभी बाल-बच्चोवाले आदमी है ।

चक्रधर—इसी से तो सेवा-कार्य इतना शिथिल है !

यशोदा—मै समझता हूँ कि यदि स्त्री और पुरुष के विचार और आदर्श एक-से हो, तो स्त्री पुरुष के कामो में बाधक होने के बदले सहायक हो सकती है । मेरी पुत्री का स्वभाव, विचार, सिद्धान्त सभी आप से मिलते है और मुझे पूरा विश्वास है कि आप दोनो एक साथ रहकर सुखी होगे । उसे कपडे का शौक नही, गहने का शौक नही, अपनी हैसियत को बढाकर दिखाने की धुन नहीं । आपके साथ वह मोटे-से-मोटे वस्त्र और मोटे-से-मोटे भोजन मे सन्तुष्ट रहेगी । अगर आप इसे अत्युक्ति न समझें, तो मै यहाँ तक कह सकता हूँ कि ईश्वर ने आपको उसके लिए बनाया है और उसको आपके लिए । सेवा-कार्य मे वह हमेशा आप से एक कदम आगे रहेगी । अंगरेज़ी, हिन्दी, उर्दू संस्कृत पढी हुई है, घर के कामो मे इतनी कुशल है कि मै नही समझता, उसके बिना मेरी गृहस्थी कैसे चलेगी ? मेरी दो बहुएँ है, लडकी की मा है । किन्तु सब-की-सब फूहड, किसी मे यह तमीज़ नही । रही शक्ल-सूरत, वह आपको इस तसवीर से मालूम हो जायगी ।

यह कहकर यशोदानन्दन ने कहार से तसवीर मँगवाई और चक्रधर के सामने रखते हुए बोले—मै तो इसमे कोई हरज नही समझता । लडके को क्या खबर है कि मुझे बहू कैसी मिलेगी । स्त्री मे कितने ही गुण हो , लेकिन यदि उसकी सूरत पुरुष को पसन्द न आई, तो वह उसकी नज़रो से गिर जाती है और उनका दाम्पत्य-जीवन दु खमय हो जाता है । मै तो यहाँ तक कहता हूँ कि वर और कन्या मे दो चार बार मुलाकात भी हो जानी चाहिये । कन्या के लिए तो यह अनिवार्य है । पुरुष को स्त्री पसन्द न आई, तो वह और शादियाँ कर सकता है । स्त्री

को पुरुष पसन्द न आया, तो उसकी तो सारी उम्र रोते ही गुजरेगी।

चक्रधर के पेट में चूहे दौड़ने लगे कि तसवीर क्योंकर ध्यान से देखूँ। वहाँ देखते शरम आती थी, मेहमान को अकेला छोड़कर घर में न जाते बनता था। कई मिनट तक तो सब्र किये बैठे रहे, फिर न रहा गया, पान की तश्तरी और तसवीर लिये हुए घर में चले आये। चाहते थे कि अपने कमरे में जाकर देखें कि निर्मला ने पूछा—क्या बातचीत हुई? कुछ दें-दिलायेंगे कि वही ५१) वालों में हैं?

चक्रधर ने उग्र होकर कहा—अगर तुम मेरे सामने देने-दिलाने का नाम लोगी, तो ज़हर खा लूँगा।

निर्मला—वाह रे! तो क्या पचीस बरस तक यों ही पाला-पोसा है क्या? मुँह धो रखें!

चक्रधर—तो बाजार में खड़ा करके बेच क्यों नहीं लेतीं? देखो कै टके मिलते हैं?

निर्मला—तुम तो अभी से ससुर के पक्ष में मुझसे लड़ने लगे। ब्याह के नाम ही में कुछ जादू है क्या!

इतने में चक्रधर की छोटी बहन मंगला तश्तरी में पान रखकर उनको देने लगी, तो कागज में लपटी हुई तसवीर उसे नजर आई। उसने तसवीर ले ली और लालटेन के सामने ले जाकर बोली—अम्मा, यह बहू की तसवीर है, देखो कितनी सुन्दर है!

निर्मला ने जाकर तसवीर देखी, तो चकित रह गई। उसकी आँखें आनंद से चमक उठीं। बोली—बेटा, तेरे भाग्य जाग गये। मुझे तो कुछ भी न मिले, तो भी इससे तेरा ब्याह कर दूँ। कितनी बड़ी-बड़ी आम की फाँक-सी आँखें हैं; मैंने ऐसी सुन्दर लड़की नहीं देखी!

चक्रधर ने समीप जाकर उड़ती हुई नजरों से तसवीर देखी और हँसकर बोले—लखावरी ईंट की-सी मोटी तो नाक है, उस पर कहती हो कितनी सुन्दर है!

निर्मला—चल, दिल मे तो फूला न समाता होगा, ऊपर से बातें बनाता है !

चक्रधर—इसी मारे मै यहाँ न लाता था। लाओ, लौटा दूँ।

निर्मला—तुझे मेरी ही कसम है जो भाँजी मारे। मुझे तो इस लडकी ने मोह लिया।

चक्रधर पान की तश्तरी और तसवीर लेकर चले, पर बाहर न जा कर अपने कमरे मे गये और बडी उत्सुकता से चित्र पर आँखें जमा दी। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो चित्र ने लज्जा से आंखे नीची कर ली हैं, मानो वह उनसे कुछ कह रही हैं। उन्होंने तसवीर को उलटकर रख दिया और चाहा कि बाहर चला जाऊँ; लेकिन दिल न माना, फिर तसवीर उठा ली और देखने लगे। आंखों को तृप्ति ही न होती थी उन्होंने अब तक जितनी सूरते देखी थीं, उनसे मन मे इसकी तुलना करने लगे। मनोरमा ही इससे मिलती थी। आँखें दोनो की एक-सी हैं, बाल नेत्रों के समान विहसित। वर्ण भी एक सा है, नख-शिख बिलकुल मिलता-जुलता, किन्तु यह कितनी लज्जाशील है, वह कितनी चपल ! यह किसी साधु की शान्ति-कुटीर की भाँति लताओं और फूलों से सज्जित, वह किसी गगनस्पर्शी शैल की भाँति विशाल। यह चित्त को मोहित करती है, वह पराभूत करती है। यह किसी पालतू पक्षी की भाँति पिजरे मे गानेवाली, वह किसी वन्य पक्षी की भाँति आकश मे उडनेवाली। यह किसी कवि-कल्पना की भाँति मधुर और रसमयी, वह किसी दार्शनिक तत्व की भाँति दुर्बोध और जटिल !

चित्र हाथ मे लिए हुए चक्रधर भावी जीवन के मधुर स्वप्न देखने लगे। यह ध्यान ही न रहा कि मुंशी यशोदानन्दन बाहर अकेले बैठे हुए है। अपना व्रत भूल गये, सेवा-सिद्धान्त भूल गये, आदर्श भूल गये, भूत और भविष्य वर्तमान मे लीन हो गये, केवल एक ही सत्य था, और वह इस चित्र की मधुर कल्पना थी !

सहसा तबले की थाप ने उनकी समाधि भंग की। बाहर संगीत-

समाज जमा था। मुंशी वज्रधर को गाने-बजाने का शौक था, गला तो रसीला न था, पर ताल-स्वर के ज्ञाता थे। चक्रधर डरे कि दादा इस समय कहीं गाने लगें, तो नाहक भद्द हो। जाकर उनके कान में कहा—आप न गाइयेगा। संगीत से रुचि थी, पर यह असह्य था कि मेरे पिताजी कत्थकों के साथ बैठकर एक प्रतिष्ठित मेहमान के सामने गायें।

जब साज मिल गया, तो झिनकू ने कहा—तहसीलदार साहब, पहले आप ही की हो जाय।

चक्रधर का दिल धड़कने लगा, लेकिन मुंशीजी ने उनकी ओर आश्वासन की दृष्टि से देखकर कहा—तुम लोग अपना गाना सुनाओ, मैं क्या गाऊँ!

झिनकू—वाह मालिक वाह! आपके सामने हम क्या गायेंगे। अच्छे-अच्छे उस्तादों की तो हिम्मत नहीं पड़ती!

वज्रधर अपनी प्रशंसा सुनकर फूल उठते थे। दो-चार बार तो 'नहीं-नहीं' की, फिर धुरपद की एक गत छेड़ ही तो दी। पंचम स्वर था, आवाज़ फटी हुई, साँस उखड़ जाती थी, बार-बार खाँसकर गला साफ करते थे, लोच का नाम न था, कभी-कभी बेसुरे भी हो जाते थे, पर साज़िन्दे वाह-वाह की धूम मचाये हुए थे। क्या कहना है, तहसीलदार साहब! ओ हो!

मुंशीजी को गाने की धुन सवार होती थी, तो जब तक गला न पड़ जाय, चुप न होते थे। गत समाप्त होते ही आपने 'सूर' का पद छेड़ दिया और 'देश' की धुन में गाने लगे।

झिनकू—यह पुराने गले की बहार है! ओ हो!

वज्रधर—नैन नीर छीजत नहिं कबहूँ निस-दिन बहत पनारे।

झिनकू—ज़रा बता दीजियेगा कैसे?

वज्रधर ने दोनों आँखों पर हाथ रखकर बताया।

चक्रधर से अब न सहा गया। नाहक अपनी हँसी करा रहे हैं।

इस बेसुरेपन पर मुंशी यशोदानंदन दिल मे कितना हँस रहे होगे! शरम के मारे वह वहाँ खडे न रह सके। घर में चले गये; लेकिन यशोदानन्दन बडे ध्यान से गाना सुन रहे थे। बीच-बीच में सिर भी हिला देते थे। जब गीत समाप्त हुआ, तो बोले—तहसीलदार साहब, आप इस फन के उस्ताद है!

वज्रधर—यह आपकी कृपा है, मै गाना क्या जानूँ, इन्हीं लोगो की संगति मे कुछ शुद-बुद आ गया।

झिनकू—ऐसा न कहिये मालिक, हम सब तो आपही के सिखाये-पढाये है।

यशोदा०—मेरा तो जी चाहता है कि आपका शिष्य हो जाऊँ।

वज्रधर—क्या कहूँ, आपने स्वर्गीय पिताजी का गाना नही सुना। बडा कमाल था। कोई उस्ताद उनके सामने मुँह न खोल सकता था। लाखो की जायदाद इसी के पीछे लुटा दी। अब तो इसकी चरचा ही उठती जाती है।

यशोदा०—अब की न कहिये। आजकल के युवको मे तो गाने की रुचि ही नही रही। न गा सकते है; न समझ सकते है। उन्हें गाते शरम आती है।

वज्रधर—रईसो मे भी इसका शौक उठता जाता है।

यशोदा०—पेट के धन्धे से किसी को छुट्टी ही नही मिलती, गाये-बजाये कौन?

झिनकू—(यशोदानन्दन से) हुजूर को भी गाने का शौक मालूम होता है!

यशोदा०—अजी, जब था तब था! सितार-वितार की दो-चार गतें बजा लेता था। अब सब छोड-छाड दिया।

झिनकू—कितना ही छोड-छाड दिया है; लेकिन आजकल के नौसिखियो से अच्छे ही होगे। अब की आप ही की हो।

यशोदानन्दन ने भी दो-चार बार इनकार करने के बाद काफी की

धुन में एक ठुमरी छेड़ दी। उनका गला मँजा हुआ था, इस कला में निपुण थे, ऐसा मस्त होकर गाया कि सुननेवाले झूम-झूम गये। उनकी सुरीली तान साज में मिल जाती थी। वज्रधर ने तो वाह-वाह का तार वांध दिया कि झिनकू के भी छक्के छूट गये। मजा यह कि साथ-ही-साथ सितार भी बजाते थे। आस-पास के लोग आकर जमा हो गये। समाँ बँध गया। चक्रधर ने यह आवाज़ सुनी, तो दिल में कहा—यह महाशय भी उसी टुकरी के लोगों में हैं, उसी रंग में रँगे हुए। अब झेंप जाती रही। बाहर आकर बैठ गये।

वज्रधर ने कहा—भाई साहब, आपने तो कमाल कर दिया। बहुत दिनों से ऐसा गाना न सुना था। कैसी रही झिनकू ?

झिनकू—हुजूर कुछ न पूछिये, सिर धुन रहा हूँ। मेरी तो अब गाने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। आपने हम सबों का रङ्ग फीका कर दिया। पुराने जमाने के रईसों की क्या बातें हैं।

यशोदा०—कभी-कभी जी बहला लिया करता हूँ, वह भी लुक-छिपकर। लड़के सुनते हैं, तो कानों पर हाथ रख लेते हैं। मैं समझता हूँ, जिसमें यह रस नहीं, वह किसी सोहबत में बैठने लायक नहीं। क्यों बाबू चक्रधर, आपको तो शौक होगा ?

वज्रधर—जी, छू नहीं गया। बस अपने लड़कों का हाल समझिये।

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—मैं गाने को बुरा नहीं समझता, हाँ, इतना जरूर चाहता हूँ कि शरीफ़ लोग शरीफ़ों ही में गायें-बजायें।

यशोदा०—गुणियों की जात-पाँत नहीं देखी जाती। हमने तो बरसों एक अन्धे फ़क़ीर की गुलामी की, तब जाके सितार बजाना आया।

आधी रात के करीब गाना बन्द हुआ। लोगों ने भोजन किया। जब मुंशी यशोदानन्दन बाहर आकर बैठे, तो वज्रधर ने पूछा—आपसे कुछ बातचीत हुई ?

यशोदा०—जी हाँ, हुई, लेकिन साफ़ नहीं खुले।

वज्रधर—विवाह के नाम से चिढ़ता है।

यशोदा—अब शायद राजी हो जायँ।

वज्रधर—अजी, सैकड़ों आदमी आ-आकर लौट गये। कई आदमी तो दस-दस हजार तक देने पर तैयार थे। एक साहब तो अपनी रियासत ही लिख देते थे, लेकिन इसने हामी न भरी।

दोनों आदमी सोये। प्रातःकाल यशोदानंदन ने चक्रधर से पूछा—क्यों बेटा, एक दिन के लिए मेरे साथ आगरे चलोगे?

चक्रधर—मुझे तो आप इस जंजाल में न फँसायें, तो बहुत अच्छा हो!

यशोदा—तुम्हें जंजाल में नहीं फँसाता बेटा, तुम्हें ऐसा सच्चा मंत्री, ऐसा, सच्चा सहायक और ऐसा सच्चा मित्र दे रहा हूँ, जो तुम्हारे उद्देश्यों को पूरा करना अपने जीवन का मुख्य कर्तव्य समझेगी। मैं स्वार्थवश ऐसा नहीं कह रहा हूँ। मैं स्वयं आगरे की हिन्दू-सभा का मन्त्री हूँ और सेवा-कार्य का महत्त्व समझता हूँ। अगर मैं समझता कि यह सम्बन्ध आपके काम में बाधक होगा, तो कभी आग्रह न करता। मैं चाहता हूँ कि आप एक बार अहल्या से मिल लें। यों तो मैं मन से आपको अपना दामाद बना चुका, पर अहल्या की अनुमति ले लेनी आवश्यक समझता हूँ। आप भी शायद यह पसन्द न करेंगे कि मैं इस विषय में स्वेच्छा से काम लूँ। आप शरमायें नहीं, यों समझ लीजिये कि आप मेरे दामाद हो चुके, केवल मेरे साथ सैर करने चल रहे हैं। आपको देखकर आपकी सास, साले सभी खुश होंगे।

चक्रधर बड़े सङ्कट में पड़े। सिद्धान्त-रूप से वह विवाह के विषय में स्त्रियों को पूरी स्वाधीनता देने के पक्ष में थे; पर इस समय आगरे जाते हुए उन्हें बड़ा सङ्कोच हो रहा था। कहीं उसकी इच्छा न हुई तो? कौन बड़ा सजीला जवान हूँ, बात-चीत करने में भी तो चतुर नहीं, और उसके सामने तो शायद मेरा मुँह ही न खुले। कहीं उसने मन फीका कर लिया, तो मेरे लिए डूब मरने की जगह होगी। फिर कपड़े-लत्ते भी नहीं हैं, बस यही दो कुरतों की पूँजी है। बहुत हँस-

वैस के बाद बोले—मै आपसे सच कहता हूँ, मै अपने को ऐसी... ऐसी सुयोग्य स्त्री के योग्य नही समझता।

यशोदा—इन हीलों से मै आपका दामन छोडनेवाला नहीं हूँ। मैं आपके मनोभावों को समझ रहा हूँ। आप सङ्कोच के कारण ऐसा कह रहे हैं; पर अहल्या उन चञ्चल लडकियों मे नही है, जिसके सामने जाते हुए आपको शरमाना पडे। आप उसकी सरलता देखकर प्रसन्न होंगे। हाँ, मै इतना कर सकता हूँ कि आपकी खातिर से पहले यह कहूँ कि आप परदेशी आदमी हैं, यहाँ सैर करने आये है। स्टेशन पर होटल पूछ रहे थे। मैंने समझा सीधे आदमी हैं, होटल में लुट जायँगे, साथ लेता आया। क्यों, कैसी रहेगी?

चक्रधर ने अपनी प्रसन्नता को छिपाकर कहा क्या यह नही हो सकता कि मै और किसी समय आ जाऊँ?

यशोदा नहीं मै इस काम में विलम्ब नही करना चाहता। मै तो उसी को लाकर दो-चार दिन के लिए यहां ठहरा सकता हूँ; पर शायद आपके घर के लोग यह पसंद न करेंगे।

चक्रधर ने सोचा—अगर मैंने और ज्यादा टालमटोल की, तो कहीं यह महाशय सचमुच ही अहल्या को यहाँ न पहुँचा दे। तब तो सारा परदा ही खुल जायगा। घर की दशा देखकर अवश्य ही उसका दिल फिर जायगा। एक तो जरा-सा घर, कही बैठने की जगह नही, उस पर न कोई साज, न सामान। विवाह हो जाने के बाद दूसरी बात हो जाती है। लडकी कितने ही बडे घराने की हो, समझ लेती है, अब तो यही मेरा घर है, अच्छा हो या बुरा। दो-चार दिन अपनी तकदीर को रोकर शांत हो जाती है। बोले—जी नही, यह मुनासिब नहीं मालूम होता। मै ही चला चलूँगा।

घर में विद्या का प्रचार होने से प्राय. सभी प्राणी कुछ-न-कुछ उदार हो जाते है। निर्मला तो खुशी से राजी हो गई, हा मुंशी चज्रधर को कुछ सङ्कोच हुआ; लेकिन यह समझकर कि यह महाशय

लडके पर लट्टू हो रहे हे कोई अच्छी रकम दे मरेंगे, उन्होंने भी कोई आपत्ति न की। अब केवल ठाकुर हरिसेवक सिंह को सूचना देनी थी। चक्रधर यो तीसरे पहर पढ़ाने जाया करते थे, पर आज ६ बजते-बजते जा पहुँचे।

ठाकुर साहब इस वक्त अपनी प्राणेश्वरी लौंगी से कुछ बाते कर रहे थे। मनोरमा की माता का देहांत हो चुका था। लौंगी उस वक्त लौंडी थी। उसने इतनी कुशलता से घर सँभाला कि ठाकुर साहब उस पर रीझ गये और उसे गृहिणी के रिक्त स्थान पर अभिषिक्त कर दिया। नाम और गुण मे इतना प्रत्यक्ष विरोध बहुत कम होगा। लोग कहते है, पहले वह इतनी दुबली थी कि फूँक दो तो उड जाय; पर गृहिणी का पद पाते ही उसकी प्रतिभा स्थूल रूप धारण करने लगी—क्षीण जलधारा बरसात की नदी की भाँति बढ़ने लगी और इस समय तो स्थूल प्रतिभा की विशाल मूर्ति थी, अचल और अपार। बरसाती नदी का जल गडहो और गडहियो मे भर गया था, बस जल-ही-जल दिखाई देता था। न आँखों का पता था, न नाक का, न मुँह का, सभी जगह स्थूलता व्याप्त हो रही थी; पर बाहर की स्थूलता ने अदर की कोमलता को अक्षुण्ण रखा था। सरल सदय, हँसमुख, सहनशील स्त्री थी, जिसने सारे घर को वशीभूत कर लिया था। यह उसी की सज्जनता थी, जो नौकरो को वेतन न मिलने पर भी जाने न देती थी। मनोरमा पर तो वह प्राण देती थी, ईर्ष्या, क्रोध, मत्सर उसे छू भी न गया था। वह उदार न हो; पर कृपण न थी। ठाकुर साहब कभी-कभी उस पर भी बिगड जाते थे, मारने दौडते थे, दो-एक बार मारा भी था; पर उसके माथे पर ज़रा भी बल न आता था। ठाकुर साहब का सिर भी दुखे, तो उसकी जान निकल जाती थी। वह उसकी स्नेहमयी सेवा ही थी, जिसने ऐसे हिंसक जीव को जकड रखा था।

इस वक्त दोनो प्राणियो मे कोई बहस छिडी हुई थी। ठाकुर साहब झल्ला-झल्लाकर बोल रहे थे और लौंगी अपराधियो की भाँति सिर

झुकाये खडी थी कि मनोरमा ने आकर कहा – बाबूजी आये हुए है और आपसे कुछ कहना चाहते है ।

ठाकुर साहब की भौहे तन गईं । बोले कहना क्या चाहते होगे, रुपये मांगने आये होगे । अच्छा, जाकर कह दो आते है, बैठिये ।

लौंगी इनके रुपए दे क्यो नही देते । बेचारे गरीब आदमी हैं, संकोच के मारे नही मांगते, कई महीने तो चढ गये ?

ठाकुर—यह भी तुम्हारी ही मूर्खता थी, जिसकी बदौलत मुझे यह तावान देना पडता है । कहता था कि कोई ईसाइन रख लो, दो-चार रुपये में काम चल जायगा । तुमने कहा—नहीं, कोई लायक आदमी होना चाहिये । इनके लायक होने मे शक नही , पर यह तो बुरा मालूम होता है कि जब देखो रुपए के लिए सिर पर सवार ! अभी कल कह दिया कि घबराइए नही, दस-पांच दिन मे मिल जायेंगे । तब तक फिर भूत की तरह सवार हो गये ।

लौंगी—कोइ ऐसी ही ज़रूरत आ पडी होगी, तभी आये होगे । १२०) हुए न ? मै लाये देती हूँ ।

ठाकुर हां, संदूक खोलकर लाना तो कोई कठिन काम नही । अखर तो उसे होती है, जिसे कुआं खोदना पडता है ।

लौंगी– वही कुआं तो उन्होने भी खोदा है । तुम्हें चार महीने तक कुछ न मिले, तो क्या हाल होगा, सोचो । मुझे तो बेचारे पर दया आती है ।

यह कहकर लौंगी गई और रुपये लाकर ठाकुर साहब से बोली... लो, दे आओ । सुन लेना, शायद कुछ कहना भी चाहते हो ।

ठाकुर - लाई भी तो रुपए, नोट न थे क्या ?

लौंगी जैसे नोट वैसे रुपए, क्या इसमें भी कुछ भेद है ?

ठाकुर— अब तुमसे क्या कहूँ । अच्छा रख दो, जाता हूँ, पानी तो नही बरस रहा है कि भीग रहे होगे ।

ठाकुर साहब ने झुँझलाकर रुपये उठा लिए और बाहर चले .

लेकिन रास्ते मे क्रोध शांत हो गया। चक्रधर के पास पहुँचे, तो विनय के देवता बने हुए थे।

चक्रधर आपको कष्ट देने...

ठाकुर—नही-नही, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। मैने आप से दस-पॉच दिन से देने का वादा किया था। मेरे पास रुपए न थे, पर स्त्रियो को तो आप जानते हैं, कितनी चतुर होती है! घर मे रुपए निकल आये। यह लीजिये।

चक्रधर—मै इस वक्त एक दूसरे ही काम से आया हूँ। मुझे एक काम से आगरे जाना है। शायद दो-तीन दिन लगेगे। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

ठाकुर हॉ-हॉ, शौक से जाइये, मुझसे पूछने की जरूरत न थी।

ठाकुर साहब अंदर चले गये, तो मनोरमा ने पूछा - आप आगरे क्या करने जा रहे हैं?

चक्रधर—एक ज़रूरत से जाता हूँ।

मनोरमा—कोई बीमार है क्या?

चक्रधर - नही, बीमार कोई नही।

मनोरमा—फिर क्या काम है, बताते क्यो नहीं? जब तक न बतलाइयेगा मै जाने न दूँगी।

चक्रधर लौटकर बता दूँगा।

मनोरमा—जी नही, मै यह नही मानती, अभी बतलाइये।

चक्रधर एक मित्र से मिलने जाता हूँ।

मनोरमा—आप मुस्करा रहे हैं! मै समझ गई, नौकरी की तलाश मे जाते हैं।

चक्रधर—नहीं मनोरमा, यह बात नहीं है। मेरी नौकरी करने की इच्छा नही है।

मनोरमा—तो क्या आप हमेशा इसी तरह देहातो मे घूमा करेगे?

चक्रधर—विचार तो ऐसा ही है, फिर जैसी ईश्वर की इच्छा!

मनोरमा— आप रुपए कहाँ से लायेंगे ? उन कामों के लिए भी तो रुपए की ज़रूरत होती होगी ?

चक्रधर—भिक्षा माँगूँगा। पुण्यकार्य भिक्षा ही पर चलते है।

मनोरमा—तो आजकल भी आप भिक्षा मंगते होंगे ?

चक्रधर—हाँ, मंगता क्यों नहीं। न मंगू तो काम कैसे चले।

मनोरमा—मुझसे तो आपने कभी नही मांगा।

चक्रधर—तुम्हारे उपर तो विश्वास है कि जब मंगूँगा, तब दे दोगी, इसीलिए कोई विशेष काम आ पडने पर मंगूँगा।

मनोरमा—और जो उस वक्त मेरे पास न हुए तो ?

चक्रधर—तो फिर कभी मंगूँगा।

मनोरमा - तो आप मुझसे अभी मांग लीजिये, अभी मेरे पास रुपए है, दे दूँगी। फिर आप न-जाने किस वक्त मांग बैठें।

यह कहकर मनोरमा अंदर गई और कलवाले १२० रुपए लाकर चक्रधर के सामने रख दिये।

चक्रधर - इस वक्त तो मुझे ज़रूरत नहीं। फिर कभी ले लूँगा।

मनोरमा—जी नही, लेते जाइये। मेरे पास खर्च हो जायँगे। एक दफे भी बाजार गई, तो यह सब ग़ायब हो जायँगे। इसी डर के मारे मै बाजार नही जाती।

चक्रधर—तुमने ठाकुर साहब से पूछ लिया है ?

मनोरमा—उनसे क्यों पूछूँ। गुड़िया लाती हूँ, तो उनसे नही पूछती, बाजे लाती हूँ, तो उनसे नही पूछती, तो फिर इसके लिए उनसे क्यों पूछूँ ?

चक्रधर—तो फिर यों मै न लूँगा। यह स्थिति और ही है। यह खयाल हो सकता है कि मैने तुमसे रुपए ठग लिये। तुम्ही सोचो, हो सकता है या नही।

मनोरमा—अच्छा, आप अमानत समझकर अपने पास रखे रहिये। इतने मे सामने से मुश्की घोड़ों की फिटन जाती हुई दिखाई दी। घोड़ो

के साजों पर गंगा-जमुनी काम किया हुआ था। चार सवार भाले उठाये पीछे दौड़ते चले आते थे।

चक्रधर – कोई रानी मालूम होती है।

मनोरमा जगदीशपुर की महरानी है। जब उनके यहां जाती हूँ, मुझे एक गिनी देती है। ये आठो गिनियाँ उन्ही की दी हुई है। न-जाने क्यो मुझे बहुत मानती है।

चक्रधर इनकी कोठी दुर्गाकुण्ड की तरफ है न? मै एक दिन इनके यहाँ भिक्षा मांगने जाऊँगा।

मनोरमा—मै जगदीशपुर की रानी होती, तो आपको बिना मांगे ही बहुत-सा धन दे देती।

चक्रधर ने मुस्कराकर कहा– तब भूल जाती।

मनोरमा—जी नही, मै कभी न भूलती।

चक्रधर—अच्छा, कभी याद दिलाऊँगा। इस वक्त यह रुपए अपने ही पास रहने दो।

मनोरमा—आपको इन्हें लेते संकोच क्यो होता है। रुपए मेरे है, महारानी ने मुझे दिये है। मै इन्हें पानी मे डाल सकती हूँ, किसी को मुझे रोकने का क्या अधिकार है। आप न लेंगे, तो मै सच कहती हूँ, आज ही जाकर गंगा मे फेक आऊँगी।

चक्रधर ने धर्म-संकट मे पडकर कहा – तुम इतना आग्रह करती हो, तो मै लिये लेता हूँ, लेकिन इसे अमानत समझूँगा।

मनोरमा प्रसन्न होकर बोली हां, अमानत ही समझ लीजिये।

चक्रधर तो मै जाता हूँ। किताब देखती रहना।

मनोरमा—आप अगर मुझसे बिना बताये चले जायँगे तो मै कुछ न पढ़ूँगी।

चक्रधर—-यह तो बडी टेढी शर्त है। बतला ही दूँ। अच्छा हँसना मत। तुम ज़रा भी मुस्कराईं और मै चला।

मनोरमा – मै दोनो हाथो से मुँह बंद किये लेती हूँ।

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—मेरे विवाह की कुछ बातचीत है। मेरी तो इच्छा नहीं है ; पर एक महाशय जबरदस्ती खींचे लिये जाते हैं।

यह कहकर चक्रधर उठ खड़े हुए। मनोरमा भी उनके साथ-साथ आई। जब वह बरामदे से नीचे उतरे, तो उसने उन्हें प्रणाम किया और तुरत अपने कमरे मे लौट आई। उसकी आंखे डबडबाई हुई थी और बार-बार रुलाई आती थी, मानो चक्रधर किसी दूर देश जा रहे है !

५

संध्या-समय जब रेलगाडी बनारस से चली, तो यशोदानंदन ने चक्रधर से पूछा—क्यों भैया, तुम्हारी राय मे झूठ बोलना किसी दशा मे क्षम्य है या नही ?

चक्रधर ने विस्मित होकर कहा—मै तो समझता हूँ, नहीं।

यशोदा०—किसी दशा में भी नही ?

चक्रधर—मै तो यही कहूँगा कि किसी दशा में भी नही, हालांकि कुछ लोग परोपकार के लिए असत्य को क्षम्य समझते हैं।

यशोदा०—मै भी उन्ही लोगों मे हूँ। मेरा ख़याल है कि पूरा वृत्तांत सुनकर शायद आप भी मुझसे सहमत हो जायँ। मैने अहल्या के विषय में आप से झूठी बातें कही है। वह वास्तव मे मेरी लडकी नही है। उसके माता-पिता का हमे कुछ भी पता नही।

चक्रधर ने बडी-बडी आंखें करके कहा—तो फिर आपके यहाँ कैसे आई ?

यशोदा०—विचित्र कथा है। १५ वर्ष हुए एक बार सूर्यग्रहण लगा था। मै उन दिनों कॉलेज में था। हमारी एक सेवा-समिति थी।

हम लोग उसी स्नान के अवसर पर यात्रियो की सेवा करने प्रयाग आये थे। तुम तो उस वक्त बहुत छोटे-से रहे होगे। इतना बडा मेला फिर नही लगा। वही हमे यह लडकी एक नाली मे खडी रोती मिली। न-जाने उसके मा-बाप नदी मे डूब गये या भीड मे कुचल गये। बहुत खोज की, पर उनका पता न लगा। विवश होकर उसे साथ लेते गये। ४-५ वर्ष तक तो उसे अनाथालय मे रखा, लेकिन जब कार्य-कर्ताओ की फूट के कारण अनाथालय बंद हो गया, तो अपने घर से ही उसका पालन-पोषण करने लगा। जन्म से न हो, पर संस्कारो से वह हमारी लडकी है। उसके कुलीन होने मे भी संदेह नही। उसका शील, स्वभाव और चातुर्य देखकर अच्छे-अच्छे घरो की स्त्रियाँ चकित रह जाती है। मै इधर एक साल से उसके लिए योग्य वर की तलाश मे था। ऐसा आदमी चाहता था, जो स्थिति को जानकर उसे सहर्ष स्वीकार करे और उसे पाकर अपने को धन्य समझे। पत्रो मे आपके लेख देखकर और आपके सेवा-कार्य की प्रशंसा सुनकर मेरी धारणा हो गई कि आप ही उसके लिए सबसे योग्य है। यह निश्चय करके आप के यहाँ आया। मैने आप से सारा वृत्तांत कह दिया। अब आपको अख्तियार है, उसे अपनाये या त्यागे, हाँ इतना कह सकता हूँ कि ऐसा रत्न आप फिर न पायेगे। मै यह जानता हूँ कि आपके पिताजी को यह बात असह्य होगी; पर यह भी जानता हूँ कि वीरात्माएँ सत्कार्य से विरोध की परवा नही करती और अत मे उस पर विजय पाती हैं।

चक्रधर गहरे विचार मे पड गये। एक तरफ अहल्या का अनुपम सौंदर्य और उज्ज्वल चरित्र था, दूसरी ओर माता-पिता का विरोध और लोक-निंदा का भय, मन मे तर्क-संग्राम होने लगा। यशोदानंदन ने उन्हें असमजस मे पडे देखकर कहा – आप चिंतित देख पडते है और चिंता की बात भी है, लेकिन जब आप-जैसे सुशिक्षित और उदार पुरुष विरोध और भय के कारण कर्तव्य और न्याय से मुँह मोडे, तो फिर हमारा उद्धार हो चुका; मै आप से सच

कहता हूँ, यदि मेरे दो पुत्रों में से एक भी क्वाँरा होता और अहल्या उसे वरना स्वीकार करती, तो मैं बड़े हर्ष से उसका उससे विवाह कर देता। आपके सामाजिक विचारों की स्वतंत्रता का परिचय पाकर ही मैंने आपके ऊपर इस बालिका के उद्धार का भार रखा है और यदि आपने भी अपने कर्तव्य को न समझा, तो मैं नहीं कह सकता, उस अबला की क्या दशा होगी।

चक्रधर रूप लावण्य की ओर से तो आँखें बन्द कर सकते थे; लेकिन उद्धार के भाव को दबाना उनके लिए असम्भव था। वह स्वतंत्रता के उपासक थे और निर्भीकता स्वतन्त्रता की पहली सीढ़ी है। उनके मन ने कहा—क्या यह काम ऐसा है कि समाज हँसे? समाज को इसकी प्रशंसा करनी चाहिये। अगर ऐसे काम के लिए कोई मेरा तिरस्कार करे, तो मैं तृण बराबर भी उसकी परवाह न करूँगा। चाहे वह मेरे माता-पिता ही हों। दृढ़ भाव से बोले—मेरी ओर से आप ज़रा भी शंका न करें। मैं इतना भीरु नहीं हूँ कि ऐसे कामों में समाज-निन्दा से डरूँ। माता-पिता को प्रसन्न रखना मेरा धर्म है; लेकिन कर्तव्य और न्याय की हत्या करके नहीं। कर्तव्य के सामने माता-पिता की इच्छा का मूल्य नहीं है।

यशोदानंदन ने चक्रधर को गले लगाते हुए कहा--भैया, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी।

यह कहकर यशोदानंदन ने अपना सितार उठा लिया और बजाने लगे। चक्रधर को कभी सितार की ध्वनि इतनी प्रिय, इतनी मधुर न लगी थी और न चाँदनी कभी इतनी सुहृद और विहसित। दाएँ-बाएँ चाँदनी छिटकी हुई थी और उसकी मन्द छटा में अहल्या रेलगाड़ी के साथ, अगणित रूप धारण किये दौड़ती चली जाती थी। कभी वह उछलकर आकाश जा पहुँचती थी, कभी नदियों की चन्द्र-चञ्चल तरङ्गों में। यशोदानंदन को न कभी इतना उल्लास हुआ था, न चक्रधर को कभी इतना गर्व। दोनों आनंद-कल्पना में डूबे हुए थे।

गाड़ी आगरे पहुँची, तो दिन निकल आया था। सुनहरा नगर हरे-हरे कुञ्जों के बीच मे विश्राम कर रहा था, मानो बालक माता की गोद मे सोया हो।

इस नगर को देखते ही चक्रधर को कितनी ही ऐतिहासिक घटनाएँ याद आ गईं। सारा नगर किसी उजडे हुए घर की भाँति श्री-हीन हो रहा था।

मुंशी यशोदानंदन अभी कुलियो को पुकार ही रहे थे कि उनकी निगाह पुलिस के सिपाहियो पर पडी। चारो तरफ़ पहरा था। मुसाफ़िरो के बिस्तरे, संदूक खोल-खोलकर देखे जाने लगे। एक थानेदार ने यशोदानंदन का असबाब भी देखना शुरू किया।

यशोदानंदन ने आश्चर्य से पूछा क्यो साहब, आज यह सख्ती क्यो है ?

थानेदार – आप लोगो ने जो काँटे बोये है, उन्ही का फल है। शहर मे फ़िसाद हो गया है।

यशोदा० — अभी तीन दिन पहले तो अमन का राज्य था, यह भूत कहाँ से उठ खडा हुआ ?

इतने मे समिति का एक सेवक दौडता हुआ आ पहुँचा। यशोदा-नंदन ने आगे बढकर पूछा--क्यो राधामोहन, यह क्या मामला हो गया ? अभी जिस दिन मैं गया हूँ, उस दिन तक तो दंगे का कोई लक्षण न था।

राधा जिस दिन आप गये, उसी दिन पंजाब से मौलवी दीन-मुहम्मद साहब का आगमन हुआ। खुले मैदान मे मुसलमानो का एक बडा जलसा हुआ। उसमे मौलाना साहब ने न-जाने क्या ज़हर उगला कि तभी से मुसलमानो को कुरबानी की धुन सवार है। इधर हिन्दुओ को भी यह जिद है कि चाहे खून की नदी बह जाय; पर कुरबानी न होने पायेगी। दोनो तरफ से तैयारियाँ हो रही है हम लोग तो समझाकर हार गये।

यशोदानंदन ने पूछा—ख्वाजा महमूद कुछ न बोले ?

राधा—वही तो उस जलसे के प्रधान थे।

यशोदानंदन आँखें फाडकर बोले—ख्वाजा महमूद !

राधा—जी हाँ, ख्वाजा महमूद ! आप उन्हें फरिश्ता समझें, असल मे वे रँगे सियार है। हम लोग हमेशा से कहते आते है कि इनसे होशियार रहिये, लेकिन आपको न-जाने क्यो उन पर इतना विश्वास था ?

यशोदानंदन ने आत्म-ग्लानि से पीडित होकर कहा—जिस आदमी को आज २५ बरसों से देखता आता हूँ, जिसके साथ कॉलेज मे पढ़ा, जो इसी समिति का किसी ज़माने मे मेम्बर था, उस पर क्योंकर विश्वास न करता। दुनिया कुछ कहे, पर मुझे ख्वाजा महमूद पर कभी शक न होगा।

राधा—आपको अख्तियार है उन्हें देवता समझे, मगर अभी-अभी आप देखेगे कि वह कितनी मुस्तैदी से कुरबानी की तैयारियाँ कर रहे है। उन्होंने देहातो से लठैत बुलाये हैं, उन्हीं ने गौएँ मोल ली है और उन्ही के द्वार पर कुरबानी होने जा रही है।

यशोदा०—ख्वाजा महमूद के द्वार पर कुरबानी होगी ! उनके द्वार पर इसके पहले या तो मेरी कुरबानी हो जायगी, या ख्वाजा महमूद की। तांगेवाले को बुलाओ।

राधा—बहुत अच्छा हो कि आप इस समय यहीं ठहर जायँ।

यशोदा०—वाह-वाह ! शहर मे आग लगी हुई है और तुम कहते हो मै यहीं रह जाऊँ। जो औरों पर बीतेगी, वही मुझ पर भी बीतेगी, इससे क्या भागना। तुम लोगो ने बडी भूल की कि मुझे पहले से सूचना न दी।

राधा—कल दोपहर तक तो हमे खुद ही न मालूम था कि क्या गुल खिल रहा है। ख्वाजा साहब के पास गये, तो उन्होने विश्वास दिलाया कि कुरबानी न होने पायेगी, आप लोग इत्मीनान रखें।

हमसे तो यह कहा, उधर शाम ही को लठैत आ पहुँचे और मुसल-मानो का डेपुटेशन सिटी मैजिस्ट्रेट के पास कुरबानी की सूचना देने पहुँच गया।

यशोदा०—महमूद भी डेपुटेशन मे थे ?

राधा—वही तो उसके कर्ता-धर्ता थे, भला वह क्यो न होते ? हमारा तो विचार है कि वही इस फिसाद की जड है।

यशोदा०—अगर महमूद मे सचमुच यह काया-पलट हो गई है, तो मै यही कहूँगा कि धर्म से ज्यादा द्वेष पैदा करनेवाली वस्तु संसार मे नहीं। और कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो महमूद मे द्वेष के भाव पैदा कर सके। चलो, पहले उन्ही से बाते होगी। मेरे द्वार पर तो इस वक्त बडा जमाव होगा।

राधा—जी हाँ, इधर आपके द्वार पर जमाव है, उधर ख्वाजा साहब के। बीच मे थोडी-सी जगह खाली है।

तीनो आदमी ताँगे पर बैठकर चले। सडको पर पुलिस के जवान चक्कर लगा रहे थे। मुसाफिरो की छडियाँ छीन ली जाती थीं। दो-चार आदमी भी साथ न खडे होने पाते थे। सिपाही तुरन्त ललकारता था। दूकाने सब बंद थी, कुँजडे भी साग बेचते न नज़र आते थे। हाँ, गलियो मे लोग जमा हो-होकर बाते कर रहे थे।

कुछ दूर तक तीनो आदमी मौन धारण किये बैठे रहे। चक्रधर शंकित होकर इधर-उधर ताक रहे थे, ज़रा भी घोडा रुक जाता, तो उनका दिल धडकने लगता कि किसी ने ताँगा रोक तो नही लिया ; लेकिन यशोदानंदन के मुख पर ग्लानि का गहरा चिन्ह दिखाई दे रहा था। उनके मुहल्ले मे आज तक कभी कुरबानी न हुई थी। हिन्दू और मुसलमान का भेद ही न मालूम होता था। उन्हें आश्चर्य होता था कि और शहरो मे कैसे हिन्दू-मुसलमानो में झगडे हो जाते है। और तीन ही दिन मे यह नौबत आ गई !

सहसा उन्होने उत्तेजित होकर कहा—राधामोहन, देखो, मै तो यही

उतरा जाता हूँ ! ज़रा महमूद से मिलूँगा, तुम इन बाबू साहब को लेकर घर जाओ। आप मेरे एक मित्र के लड़के हैं, यहाँ सैर करने आये हैं। बैठक में आपकी चारपाई डलवा देना और देखो, अगर दैव-संयोग से मैं लौटकर न आ सकूँ—घबराने की बात नहीं, जब लोग खून-खच्चर करने पर तुले हुए हैं, तो सब कुछ संभव है और मैं उन आदमियों में नहीं हूँ कि गौ की हत्या होते देखूँ और शान्त खड़ा रहूँ—अगर मैं लौटकर न आ सकूँ, तो तुम घर में कहला देना कि अहल्या का पाणि-ग्रहण आप ही के साथ कर दिया जाय।

यह कहकर उन्होंने कोचवान से ताँगा रोकने को कहा।

चक्रधर—मैं भी आपके साथ ही रहना चाहता हूँ।

यशोदा०—नहीं भैया, तुम मेरे मेहमान हो, तुम्हें मेरे साथ रहने की जरूरत नही। तुम चलो, मैं भी अभी आता हूँ।

चक्रधर—क्या आप समझते हैं कि गौ-रक्षा आप ही का धर्म है, मेरा धर्म नही ?

यशोदा०—नही, यह बात नही बेटा, तुम मेरे मेहमान हो और तुम्हारी रक्षा करना मेरा धर्म है।

इस वक्त ताँगा धीरे-धीरे ख्वाजा महमूद के मकान के सामने आ पहुँचा। हज़ारो आदमियो का जमाव था। यद्यपि किसी के हाथ में लाठी या डडे न थे, पर उनके मुख जिहाद के जोश से तमतमाये हुए थे। यशोदानन्दन को देखते ही कई आदमी उनकी तरफ़ लपके; लेकिन जब उन्होने ज़ोर से कहा—मैं तुमसे लड़ने नहीं आया हूँ, कहाँ है ख्वाजा महमूद, मुमकिन हो तो जरा उन्हें बुला लो, तो लोग हट गये।

ज़रा देर मे एक लम्बा-सा आदमी, गाढे की अचकन पहने, आकर खड़ा हो गया; भरा हुआ वदन था, लम्बी डाढी, जिसके कुछ बाल खिचडी हो गये थे और गोरा रंग। मुख से शिष्टता झलक रही थी। यही ख्वाजा महमूद थे।

यशोदानन्दन ने त्योरियाँ बदलकर कहा—क्यों ख्वाजा साहब, आपको याद है इस मुहल्ले में कभी कुरबानी हुई है ?

महमूद—जी नहीं, जहाँ तक मेरा ख़याल है, यहाँ कभी कुरबानी नहीं हुई ।

यशोदा०—तो फिर आज आप यहाँ कुरबानी करने की नई रस्म क्यों निकाल रहे हैं ?

महमूद—इसलिए कि कुरबानी करना हमारा हक है । अब तक हम आपके जज़बात का लिहाज़ करते थे, अपने माने हुए हक को भूल गये थे ; लेकिन जब आप लोग अपने हको के सामने हमारे जज़बात की परवा नहीं करते, तो कोई वजह नही कि हम अपने हकों के सामने आपके जज़बात की परवा करें । मुसलमानो की शुद्धि करने का आपको पूरा हक हासिल है ; लेकिन कम-से-कम पाँच सौ बरसों मे आपके यहाँ शुद्धि की कोई मिसाल नहीं मिलती । आप लोगो ने एक मुर्दा हक को ज़िन्दा किया है । इसीलिए न कि मुसलमानो की ताकत और असर कम हो जाय । जब आप हमें ज़ेर करने के लिए नये-नये हथियार निकाल रहे हैं, तो हमारे लिए इसके सिवा और क्या चारा है कि अपने हथियारो को दूनी ताकत से चलायें ।

यशोदा०—इसके यह मानी हैं कि कल आप हमारे द्वारों पर, हमारे मंदिरो के सामने, कुरबानी करें और हम चुपचाप देखा करें ! आप यहाँ हरगिज़ कुरबानी नहीं कर सकते और करेंगे तो इसकी जिम्मेदारी आपके सिर होगी ।

यह कहकर यशोदानंदन फिर ताँगे पर जा बैठे । दस-पाँच आदमियों ने ताँगे को रोकना चाहा ; पर कोचवान ने घोड़ा तेज़ कर दिया । दम-के-दम में ताँगा उड़ाता हुआ यशोदानंदन के द्वार पर पहुँच गया, जहाँ हज़ारों आदमी खड़े थे । इन्हें देखते ही चारों तरफ़ हलचल मच गई । लोगो ने चारों तरफ़ से आकर उन्हें घेर लिया । अभी तक फौज का अफ़सर न था, फौज दुबिधे में पड़ी हुई थी, समझ मे न आता था

कि क्या करें। सेनापति के आते ही सिपाहियों में जान-सी पड गई, जैसे सूखे धान में पानी पड जाय।

यशोदानंदन तांगे से उतर पडे और ललकारकर बोले—क्यों भाइयो, क्या विचार है, यहाँ कुरबानी होगी ? आप जानते है इस मुहल्ले में आज तक कभी कुरबानी नही हुई। अगर आज हम यहाँ कुरबानी करने देंगे, तो कौन कह सकता है कि कल को हमारे मन्दिरों के सामने गौ-हत्या न होगी!

कई आवाज़े एक साथ आई—हम मर मिटेंगे ; पर यहाँ कुरबानी न होने देगे।

यशोदा०—खूब सोच लो, क्या करने जा रहे हो। वह लोग सब तरह से लैस है। ऐसा न हो, तुम लाठियों के पहले ही वार में वहाँ भाग खडे हो ?

कई आवाज़े एक साथ आई—भाइयो, सुन लो, अगर कोई पीछे कदम हटायेगा, तो उसे गौ-हत्या का पाप लगेगा।

एक सिक्ख जवान—अजी देखिये, छक्के छुडा देंगे।

एक पञ्जाबी हिन्दू—एक-एक की गरदन तोड के रख दूँगा।

आदमियों को यों उत्तेजित करके यशोदानन्दन आगे बढे और जनता 'महावीर' और 'श्रीरामचन्द्र' की जय-ध्वनि से वायुमण्डल को कम्पायमान करती हुई उनके पीछे चली। उधर मुसलमानों ने भी डण्डे सँभाले। करीब था कि दोनों दलों मे मुठभेड हो जाय कि एकाएक चक्रधर आगे बढकर यशोदानन्दन के सामने खडे हो गये और विनीत, किन्तु दृढ भाव से बोले—आप अगर उधर जाते है, तो मेरी छाती पर पाँव रखकर जाइये। मेरे देखते यह अनर्थ न होने पायेगा।

यशोदानन्दन ने चिढकर कहा—हट जाओ। अगर एक क्षण की भी देर हुई, तो फिर पछताने के सिवा और कुछ हाथ न आयेगा।

चक्रधर—आप लोग वहाँ जाकर करेंगे क्या ?

यशोदा०—हम इन ज़ालिमों से गौ को छीन लेंगे।

चक्रधर—अहिंसा का नियम गौओं ही के लिए नहीं, मनुष्यों के लिए भी तो है।

यशोदा०—कैसी बातें करते हो जी ! क्या यहां खड़े अपनी आंखों से गौ की हत्या होते देखें ?

चक्रधर—अगर आप एक बार दिल थामकर देख लेंगे, तो यक़ीन है कि फिर आपको कभी यह दृश्य न देखना पड़े।

यशोदा०—हम इतने उदार नहीं हैं।

चक्रधर—ऐसे अवसर पर भी ?

यशोदा०—हम महान्-से-महान् उद्देश्य के लिए भी यह मूल्य नहीं दे सकते। इन दामों स्वर्ग भी मँहगा है।

चक्रधर—मित्रो, ज़रा विचार से काम लो।

कई आवाज़ें—विचार से काम लेना कायरों का काम है।

एक सिक्ख जवान—जब डंडे से काम लेने का मौका आये, तो विचार को बंद करके रख देना चाहिये।

चक्रधर—तो फिर जाइये, लेकिन उस गौ को बचाने के लिए आपको अपने एक भाई का खून करना पड़ेगा।

सहसा एक पत्थर किसी तरफ से आकर चक्रधर के सिर में लगा। खून की धार बह निकली, लेकिन चक्रधर अपनी जगह से हिले नहीं। सिर थामकर बोले—अगर मेरे रक्त से आपकी क्रोधाग्नि शांत होती हो, तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। अगर मेरा खून और कई जानों की रक्षा कर सके, तो इससे उत्तम कौन-सी मृत्यु होगी ?

फिर दूसरा पत्थर आया; पर अब की चक्रधर को चोट न लगी। पत्थर कानों के पास से निकल गया।

यशोदानंदन गरजकर बोले—यह कौन पत्थर फेंक रहा है ? सामने क्यों नहीं आता ? क्या वह समझता है कि उसी ने गौ-रक्षा का ठीका ले लिया है। अगर बड़ा वीर है, तो क्यों नहीं चंद कदम आगे जाकर अपनी वीरता दिखाता ! पीछे खड़ा पत्थर क्यों फेंकता है ?

एक आवाज—धर्म-द्रोहियों को मारना अधर्म नही है।

यशोदा०—जिसे तुम धर्म का द्रोही समझते हो, वह तुम से कहीं सच्चा हिंदू है।

एक आवाज़—सच्चे हिन्दू वही तो होते हे, जो मौके पर बग़लें झांकने लगें और शहर छोड़कर दो-चार दिन के लिए खिसक जायँ।

कई आदमी—यह कौन मंत्रीजी पर आक्षेप कर रहा है? कोई उसकी जबान पकड़कर क्यों नहीं खींच लेता।

यशोदानंदन—आप लोग सुन रहे है, मुझ पर कैसे-कैसे दोष लगाये जा रहे है। मै सच्चा हिंदू नहीं हूँ, मै मौका पड़ने पर बग़लें झांकता हूँ और जान बचाने के लिए शहर से भाग जाता हूँ। ऐसा आदमी आपका मन्त्री बनने के योग्य नही है। आप उस आदमी को अपना मन्त्री बनायें, जिसे आप सच्चा हिंदू समझते हों। मै धर्म से पहले अपने आत्म-गौरव की रक्षा करना चाहता हूँ।

कई आदमी—महाशय, आपको ऐसे मुँहफट आदमियों की बातों का ख़याल न करना चाहिये।

यशोदा०—यह मेरी २५ बरसों की सेवा का उपहार है! जिस सेवा का फल अपमान हो, उसे दूर ही से मेरा सलाम है।

यह कहते हुए मुंशी यशोदानंदन घर की तरफ चले। कई आदमियों ने उन्हें रोकना चाहा, कई आदमी उनके पैरों पड़ने लगे; लेकिन उन्होंने एक न मानी। वह तेजस्वी आदमी थे। अपनी संस्था पर स्वेच्छाचारी राजाओं की भांति शासन करना चाहते थे। आलोचनाओं को सहन करने की उनमे सामर्थ्य ही न थी।

उनके जाते ही यहां आपस में 'तू-तू-मैं-मैं' होने लगी। एक दूसरे पर आक्षेप करने लगा। गालियों की नौबत आई, यहां तक कि दो-चार आदमियों से हाथा-पाई भी हो गई।

चक्रधर ने जब देखा कि इधर से अब कोई शंका नही है, तो वह लपककर मुसलमानों के सामने आ पहुँचे और उच्च स्वर से बोले—

हज़रात, मैं कुछ अर्ज़ करने की इजाज़त चाहता हूँ ।

एक आदमी—सुनो, सुनो, यही तो अभी हिन्दुओं के सामने खड़ा था ।

दूसरा आदमी—दुश्मनों के कदम उखड़ गये । सब भागे जा रहे हैं ।

तीसरा आदमी—इसी ने शायद उन्हें समझा-बुझाकर हटा दिया है । देखो, क्या कहता है ?

चक्रधर—अगर इस गाय की कुरबानी करना आप अपना मज़हबी फ़र्ज समझते हों, तो शौक से कीजिये । मैं आपके मज़हबी मामले में दख़ल नहीं दे रहा हूँ ; लेकिन क्या यह लाज़मी है कि इसी जगह कुरबानी की जाय ?

एक आदमी—हमारी खुशी है, जहाँ चाहेंगे कुरबानी करेंगे, तुमसे मतलब !

चक्रधर—बेशक, मुझे बोलने का कोई हक नहीं है ; लेकिन इसलाम की जो इज़्ज़त मेरे दिल में है, वह मुझे बोलने के लिए मजबूर कर रही है । इसलाम ने कभी दूसरे मज़हबवालों की दिलज़ारी नहीं की । उसने हमेशा दूसरों के जज़बात का एहतराम किया है । बुगदाद और रूम, स्पेन और मिस्र की तारीखें उस मज़हबी आज़ादी की शाहिद हैं, जो इसलाम ने उन्हें अता की थी । अगर आप हिन्दू जज़बात का लिहाज़ करके किसी दूसरी जगह कुरबानी करें, तो यक़ीनन इसलाम के बकार में फ़र्क न आयेगा ।

एक मौलवी ने ज़ोर देकर कहा—ऐसी मीठी-मीठी बातें हमने बहुत सुनी हैं । कुरबानी यहीं होगी । जब दूसरे हमारे ऊपर जब्र करते हैं, तो हम उनके जज़बात का क्यों लिहाज़ करें ।

ख्वाजा महमूद बड़े ग़ौर से चक्रधर की बातें सुन रहे थे । मौलवी साहब की उद्दण्डता पर चिढ़कर बोले—क्या शरीयत का हुक्म है कि कुरबानी यहीं हो, किसी दूसरी जगह नहीं की जा सकती ?

मौलवी साहब ने ख्वाजा महमूद की तरफ़ अविश्वास की दृष्टि से देखकर कहा—मजहब के मामले मे उलमा के सिवा और किसी को दख़ल देने का मजाज़ नही है।

ख्वाजा—बुरा न मानियेगा मौलवी साहब, अगर दस सिपाही आकर यहाँ खडे हो जाये, तो बग़लें झाँकने लगियेगा!

मौलवी—किसकी मजाल है कि हमारे दीनी उमूर में मज़ाहमत करे।

ख्वाजा—आपको तो अपने हलवे-माँडे से काम है, ज़िम्मेदारी तो हमारे ऊपर आयेगी, दूकानें तो हमारी लुटेंगी, आपके पास फटे बोरिये और फूटे बधने के सिवा और क्या रखा है। जब वह लोग मसलहत देखकर किनारा कर गये, तो हमे भी अपनी ज़िद से बाज़ आ जाना चाहिये। क्या आप समझते हैं, वह लोग आपसे डरकर भागे। हमारे दुगुने आदमी थे। अगर चढ आते, तो सँभलना मुश्किल हो जाता।

मौलवी—जनाब, जिहाद करना कोई ख़ालाजी का घर नही, आप दुनिया के बन्दे है, दीन की हकीकत क्या समझे।

ख्वाजा—बजा है, आपकी शहादत तो कही नहीं गई है। ज़िल्लत तो हमारी है।

मौलवी—भाइयो, आप लोग ख्वाजा साहब की ज्यादती देख रहे हैं। अब आप ही फैसला कीजिये कि दीन के मामलात मे उलमा का फैसला वाजिब है या उमरा का।

एक मोटे-ताजे डढियल आदमी ने कहा—आप बिस्मिल्लाह कीजिये। उमरा को दीन से कोई सरोकार नहीं।

यह सुनते ही एक आदमी बडा-सा छुरा लेकर निकल पडा और कई आदमी गाय की सींगे पकडने लगे। गाय अब तक तो चुपचाप खडी थी। छुरा देखते ही वह छटपटाने लगी। चक्रधर यह दृश्य देखकर तिलमिला उठे। निराशा-क्रोध से काँपते हुए बोले—भाइयो, एक गरीब, बेकस जानवर को मारना बहादुरी नहीं। खुदा बेकसो के खून

से नही खुश होता। अगर जवांमर्दी दिखानी है, तो किसी शेर का शिकार करो, किसी चीते को मारो, किसी जंगली सुअर का पीछा करो। उस कुरबानी से मुमकिन है खुदा खुश हो। जब तक हिन्दू सामने खडे थे, किसी की हिम्मत न पडी कि छुरा हाथ मे लेता। जब वे चले गये, तो आप लोग शेर हो गये?

एक आदमी—तो क्यो चले गये? मैदान मे खडे क्यों न रहे। गौ-रक्षा का जोश दिखाते, दुम दबाकर भाग क्यो खडे हुए?

चक्रधर—भाग नही खडे हुए और न लडने मे वे आपसे कम है। उनकी समझ मे यह बात आ गई कि जानवर की हिमायत मे इंसान का खून बहाना इंसान को मुनासिब नही।

मौलवी—शुक्र है, उन्हें इतनी समझ तो आई!

चक्रधर—लेकिन आप तो अभी तक उनकी दिलाज़ारी पर कमर बॉधे हुए है। खैर, आपको अख्तियार है जो चाहें करे। मगर मै यकीन के साथ कहता हूॅ कि यह दिलाज़ारी एक दिन रङ्ग लायेगी। यह न समझिये कि इस वक्त कोई हिन्दू मैदान मे नहीं है। हर एक कुरबानी हिन्दुस्तान के २१ करोड हिंदुओ के दिलो को ज़ख्मी कर देती है और इतनी बडी तादाद के दिलो को दुखाना बडी-से-बडी कौम के लिए भी एक दिन पछतावे का बाइस हो सकता है। अगर यह आपकी गिज़ा है, तो शौक से खाइये। लाखो गौएँ रोज़ कत्ल होती है। हिन्दू सिर नही उठाते। फिर यह क्योकर मुमकिन है कि वह आपके मजहबी मामले मे दख़ल दें। हिन्दुओ से ज्यादा बेतअस्सुब कौम दुनिया में नही है; लेकिन जब आप उनकी दिलाज़ारी और महज़ दिलाज़ारी के लिए कुरबानी करते है, तो उनको ज़रूर सदमा होता है और उनके दिलो मे शोला उठता है, उसका आप कयास नही कर सकते। अगर आपको यकीन न आये तो देख लीजिये कि इस गाय के साथ ही एक हिन्दू कितनी खुशी से अपनी जान दे देता है!

यह कहते हुए चक्रधर ने तेज़ी से लपककर गाय की गरदन पकड

ली और बोले—आज आपको इस गौ के साथ एक इन्सान की भी कुरबानी करनी पड़ेगी।

सभी आदमी चकित हो-होकर चक्रधर की ओर ताकने लगे। मौलवी साहब ने क्रोध से उन्मत्त होकर कहा—कलाम-पाक की कसम, हट जाओ, वरना गज़ब हो जायगा।

चक्रधर—हो जाने दीजिये! खुदा की यही मरज़ी है कि आज गाय के साथ मेरी कुरबानी भी हो।

ख्वाजा महमूद—क्यों भई, तुम्हारा घर कहां है?

चक्रधर—परदेशी मुसाफिर हूँ।

ख्वाजा—कसम खुदा की, तुम जैसा दिलेर आदमी नहीं देखा। नाम के लिए तो गाय को माता कहनेवाले बहुत हैं, पर ऐसे बिरले ही देखे, जो गौ के पीछे जान लड़ा दे। तुम कलमा क्यों नहीं पढ़ लेते।

चक्रधर—मैं एक खुदा का कायल हूँ। वही सारे जहान का ख़ालिक और मालिक है। फिर और किस पर ईमान लाऊँ?

ख्वाजा—वल्लाह, तब तो तुम सच्चे मुसलमान हो। हमारे हजरत को अल्लाह-ताला का रसूल मानते हो?

चक्रधर—बेशक मानता हूं, उनकी इज्ज़त करता हूं और उनकी तौहीद का क़ायल हूं।

ख्वाजा—हमारे साथ खाने-पीने से परहेज़ तो नहीं करते?

चक्रधर—ज़रूर करता हूं, उसी तरह, जैसे किसी ब्राह्मण के साथ खाने से परहेज़ करता हूं, अगर वह पाक-साफ़ न हो।

ख्वाजा—काश, तुम-जैसे समझदार तुम्हारे और भाई भी होते! मगर यहां तो लोग हमें मलिच्छ कहते हैं। यहां तक कि हमें कुत्तों से भी नजिस समझते हैं। उनकी थालियों में कुत्ते खाते हैं, पर मुसलमान उनके गिलास में पानी नहीं पी सकता। वल्लाह आपसे मिलकर दिल खुश हो गया। अब कुछ-कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कौमों

मे इत्तफ़ाक हो जाय। अब आप जाइये। मै आपको यकीन दिलाता हूँ कि कुरबानी न होगी।

चक्रधर—और साहबो से तो पूछिये!

कई आवाज़े—होती तो ज़रूर, लेकिन अब न होगी। आप वाकई दिलेर आदमी है।

ख्वाजा—यहाँ आप कहाँ ठहरे हुए है? मै आपसे मिलूँगा।

चक्रधर—आप क्यो तकलीफ़ उठायेगे, मैं खुद हाज़िर हूँगा।

ख्वाजा महमूद ने चक्रधर को गले लगाकर रुखसत किया। इधर उसी वक्त गाय की पगहिया खोल दी गई। वह जान लेकर भागी। और लोग भी इस 'नौजवान' की 'हिम्मत' और 'जवाँमर्दी' की तारीफ़ करते हुए चले।

चक्रधर को आते देखकर यशोदानन्दन अपने कमरे से निकल आये और उन्हें छाती से लगाते हुए बोले—भैया, आज तुम्हारा धैर्य और साहस देखकर दंग रह गया। तुम्हें देखकर मुझे अपने ऊपर लज्जा आ रही है। तुमने आज हमारी लाज रख ली। अगर यहाँ कुरबानी हो जाती, तो हम मुँह दिखाने लायक न रहते।

एक बूढ़ा—आज तुमने वह काम कर दिखाया, जो सैकडो आदमियों के रक्त-पात से भी न होता।

चक्रधर—मैने कुछ भी नहीं किया। यह उन लोगो की शराफ़त थी कि मेरी अनुनय-विनय सुन ली।

यशोदा०—अरे भाई, रोने का भी तो ढङ्ग होता है। अनुनय-विनय हमने भी सैकडो ही बार की, लेकिन हर दफे गुत्थी और उलझती ही गई। आइये, आपके घाव की मरहम-पट्टी तो हो जाय।

चक्रधर को कमरे मे बिठाकर यशोदानंदन ने घर मे जाकर अपनी स्त्री वागीश्वरी से कहा—आज मेरे एक दोस्त की दावत करनी होगी। भोजन खूब दिल लगाकर बनाना। अहल्या, आज तुम्हारी पाक-परीक्षा होगी।

अहल्या--यह कौन आदमी था दादा, जिसने मुसलमानो के हाथों से गौ की रक्षा की ?

यशोदा०--यही तो मेरे दोस्त है, जिनकी दावत करने को कह रहा हूँ। बेचारे रास्ते में मिल गये। यहाँ सैर करने आये है। मंसूरी जायेंगे।

अहल्या—(वागीश्वरी से) अम्माँ, ज़रा उन्हे अंदर बुला लेना, तो दर्शन करेंगे। दादा, मै कोठे पर बैठी सब तमाशा देख रही थी। जब हिन्दुओं ने उन पर पत्थर फेकना शुरू किया, तो ऐसा क्रोध आता था कि वही से फटकारूँ। बेचारे के सिर से खून निकलने लगा; लेकिन ज़रा भी न बोले। जब वह मुसलमानो के सामने आकर खडे हुए, तो मेरा कलेजा धडकने लगा कि कही सब-के-सब उन पर टूट न पडें। बडे ही साहसी आदमी मालूम होते है। सिर मे बहुत चोट आई है क्या ?

यशोदा०—हाँ, खून जम गया है, लेकिन उन्हे उसकी कुछ परवा ही नही। डॉक्टर को बुला रहा हूँ।

वागीश्वरी—खा-पी चुके, तो जरा देर के लिए यहीं भेज देना। मेरे लडको की जोडी तो है!

यशोदा०—अच्छी बात है। ज़रा सफाई कर लेना।

पडोस मे एक डॉक्टर रहते थे। यशोदानंदन ने उन्हें बुलाकर घाव पर पट्टी बँधवा दी। फिर कुछ देर तक बातें होती रही। धीरे-धीरे सारा मुहल्ला जमा हो गया। कई श्रद्धालु जनो ने तो चक्रधर के चरण छुए। आखिर भोजन का समय आया। जब लोग खाने बैठे, तो यशोदानंदन ने कहा—भाई, बावूजी से जो कुछ कहना हो कह लो, फिर मुझसे शिकायत न करना कि तुम उन्हें नही लाये। बावूजी, इस घर की और मुहल्ले की कई स्त्रियों की इच्छा है कि आपके दर्शन करें। आपको कोई आपत्ति तो नहीं है ?

वागीश्वरी—हाँ बेटा, ज़रा देर के लिए चले आना, नही तो अपने

घर जाके कहोगे न कि मैंने जिन लोगों के लिए जान लड़ा दी, उन्ही ने बात भी न पूछी ?

चक्रधर ने शरमाते हुए कहा—आप लोगों ने मेरी जो ख़ातिर की वह कभी नही भूल सकता। उसके लिए मै सदैव आपका एहसान मानता रहूँगा।

ज्यों ही लोग चौके से उठे, अहल्या ने कमरे की सफाई करनी शुरू की। दीवार की तसवीरें साफ की, फर्श फिर से झाड़कर बिछाया, एक छोटी-सी मेज़ पर फूलों का गिलास रख दिया, एक कोने मे अगर की बत्ती जलाकर रख दी। पान बनाकर तश्तरी मे रखे। इन कामों से फ़ुरसत पाकर उसने एकांत मे बैठकर फूलों की एक माला गूँथनी शुरू की। मन मे सोचती थी न जाने कौन हैं, स्वभाव कितना सरल है, लजाने मे तो औरतों से भी बढे हुए हैं। खाना खा चुके; पर सिर न उठाया। देखने मे ब्राह्मण मालूम होते हैं। चेहरा देखकर तो कोई नही कह सकता कि यह इतने साहसी होंगे।

सहसा वागीश्वरी ने आकर कहा—बेटी, दोनों आदमी आ रहे हैं। ज़रा साड़ी तो बदल लो।

अहल्या 'ऊँह' करके रह गई। हाँ, उसकी छाती में धड़कन होने लगी। एक क्षण मे यशोदानंदनजी चक्रधर को लिये हुए कमरे मे आये। वागीश्वरी और अहल्या दोनों खड़ी हो गई। यशोदानंदन ने चक्रधर को कालीन पर बैठा दिया और खुद बाहर चले गये। वागीश्वरी पंखा झलने लगी; लेकिन अहल्या मूर्ति की भाँति खड़ी रही।

चक्रधर ने उड़ती हुई निगाहों से अहल्या को देखा। ऐसा मालूम हुआ, मानो कोमल, स्निग्ध, सुगंधमय प्रकाश की एक लहर-सी आँखों में समा गई।

वागीश्वरी ने मिठाई की तश्तरी सामने रखते हुए कहा—कुछ जल-पान कर लो भैया, तुमने कुछ खाना भी तो न खाया! तुम-जैसे वीरों को तो सवा सेर से कम न खाना चाहिये। धन्य है वह माता,

जिसने-ऐसे बालक को जन्म दिया ! अहल्या, ज़रा गिलास में पानी तो ला। भैया, जब तुम मुसलमानो के सामने अकेले खडे थे, तो यह ईश्वर से तुम्हारी कुशल मना रही थी। जाने कितनी मनौतियां कर डालीं। कहाँ है वह माला, जो तूने गूँथी थी, अब पहनाती क्यों नही।

अहल्या ने लजाते हुए कांपते हाथों से माला चक्रधर के गले मे डाल दी और आहिस्ता से बोली—क्या सिर मे ज्यादा चोट आई ?

चक्रधर—नही तो, बाबूजी ने ख्वाहमख्वाह पट्टी बँधवा दी।

वागीश्वरी—जब तुम्हें चोट लगी है, तो इसे इतना क्रोध आया था कि उस आदमी को पा जाती, तो मुँह नोच लेती। क्या काम करते हो बेटा !

चक्रधर—अभी तो कुछ नही करता, पडे-पडे खाया करता हूँ; मगर जल्द ही कुछ-न-कुछ करना ही पडेगा। धन से तो मुझे बहुत प्रेम नही है और धन मिल भी जाय, तो मुझे उसको भोगने के लिए दूसरो की मदद लेना पडे। हाँ, इतना अवश्य चाहता हूँ कि किसी का आश्रित होकर न रहना पडे।

वागीश्वरी—कोई सरकारी नौकरी नहीं मिलती क्या ?

चक्रधर—नौकरी करने की तो मेरी इच्छा ही नही है। मैंने पक्का निश्चय कर लिया है कि नौकरी न करूँगा। न मुझे खाने का शौक है, न पहनने का, न ठाट-बाट का, मेरा निर्वाह बहुत थोडे मे हो सकता है।

वागीश्वरी—और जब विवाह हो जायगा, तब क्या करोगे ?

चक्रधर—उस वक्त सिर पर जो आयेगी, देखी जायगी। अभी से क्यो उसकी चिन्ता करूँ ?

वागीश्वरी—जल-पान तो कर लो, या मिठाई भी नही खाते ?

चक्रधर मिठाइयाँ खाने लगे। इतने मे महरी ने आकर कहा—बडी बहूजी, मेरे लाला को रात से खाँसी आ रही है; तिल-भर भी नहीं रुकती, कोई दवाई दे दो।

वागीश्वरी दवा देने चली गई। अहल्या अकेली रह गई, तो

चक्रधर ने उसकी ओर देखकर कहा—आपको मेरे कारण बड़ा कष्ट हुआ। मैं तो इस उपहार के योग्य न था।

अहल्या—यह उपहार नहीं, भक्त की भेंट है।

चक्रधर—मेरा परम सौभाग्य है कि बैठे-बैठाये इस पद को पहुँच गया।

अहल्या—आपने आज इस शहर के हिन्दूमात्र की लाज रख ली। क्या और पानी दूँ?

चक्रधर—तृप्त हो गया। आज मालूम हुआ कि जल मे कितना स्वाद है! शायद अमृत मे भी यह स्वाद न होगा?

वागीश्वरी ने आकर मुस्कराते हुए कहा—भैया, तुमने तो आधी मिठाइयाँ भी नहीं खाई। क्या इसे देखकर भूख-प्यास बन्द हो गई? यह मोहिनी है, जरा इससे सचेत रहना।

अहल्या – अम्माँ, तुम छोटे-बड़े किसी का लिहाज़ नहीं करती!

वागीश्वरी—अच्छा बताओ, तुमने इनकी रक्षा के लिए कौन-कौन-सी मनौतियाँ की थीं?

अहल्या—मुझे आप दिक करेंगी, तो चली जाऊँगी।

चक्रधर यहाँ कोई घण्टे-भर तक बैठे रहे। वागीश्वरी ने उनके घर का सारा वृत्तांत पूछा—कै भाई है, कै बहिने है, पिताजी क्या करते है, बहनो का विवाह हुआ है या नही? चक्रधर को उसके व्यवहार मे इतना मातृ-स्नेह भरा मालूम होता था, मानो उससे उनका पुराना परिचय है! चार बजते-बजते ख्वाजा महमूद के आने की ख़बर पाकर चक्रधर बाहर चले आये। और भी कितने ही आदमी मिलने आये थे। शाम तक उन लोगो से बाते होती रही। निश्चय हुआ कि एक पञ्चायत बनाई जाय और आपस के झगड़े उसी के द्वारा तय हुआ करें। चक्रधर को भी लोगो ने उस पञ्चायत का एक मेम्बर बनाया। रात को जब अहल्या और वागीश्वरी छत पर लेटी, तो वागीश्वरी ने पूछा—अहल्या, सो गई क्या?

अहल्या—नहीं अम्माँ, जाग तो रही हूँ।

वागीश्वरी—हाँ, आज तुझे क्यों नींद आयेगी! इनसे व्याह करेगी?

अहल्या—अम्माँ, मुझे गालियाँ दोगी, तो मैं नीचे जाकर लेटूँगी, चाहे मच्छर भले ही नोच खायें।

वागीश्वरी—अरे तो मैं कौन-सी गाली दे रही हूँ। क्या व्याह न करेगी? ऐसा अच्छा वर तुझे और कहाँ मिलेगा?

अहल्या—तुम न मानोगी, लो मैं जाती हूँ!

वागीश्वरी—मैं दिल्लगी नहीं कर रही हूँ, सचमुच पूछती हूँ। तुम्हारी इच्छा हो, तो बातचीत की जाय। अपनी ही बिरादरी के हैं। कौन जाने राज़ी हो जायें।

अहल्या—सब बातें जानकर भी?

वागीश्वरी—तुम्हारे बाबूजी ने सारी कथा पहले ही सुना दी है।

अहल्या—तो कहीं मानें न?

वागीश्वरी—टालो मत, दिल की बात साफ़-साफ़ कह दो।

अहल्या—तुम मेरे दिल का हाल मुझसे अधिक जानती हो, फिर मुझसे क्यों पूछती हो?

वागीश्वरी—वह धनी नहीं है, याद रखो!

अहल्या—मैं धन की लौंडी कभी नहीं रही।

वागीश्वरी—तो अब तुम्हें संशय में क्यों रखूँ। तुम्हारे बाबूजी तुमसे मिलाने के लिए ही इन्हें काशी से लाये हैं। इनके पास और कुछ हो या न हो, हृदय अवश्य है और ऐसा हृदय जो बहुत कम लोगों के हिस्से में आता है। ऐसा स्वामी पाकर तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।

अहल्या ने डबडबाई आँखों से वागीश्वरी को देखा, पर मुँह से कुछ न बोली। कृतज्ञता शब्दों में आकर शिष्टाचार का रूप धारण कर लेती है। उसका मौलिक रूप वही है, जो आँखों से बाहर निकलते हुए काँपता और लजाता है।

४

६

'मुंशी' वज्रधर उन रेल के मुसाफ़िरो मे थे, जो पहले तो गाड़ी में खडे होन की जगह माँगते है, फिर बैठने की फ़िक्र करने लगते है और अन्त मे सोने की तैयारी कर देते है। चक्रधर एक बडी रियासत के दीवान की लडकी को पढायें और वह इस स्वर्णसंयोग से लाभ न उठायें ! यह क्योंकर हो सकता था ! दीवान साहब को सलाम करने आने-जाने लगे। बाते करने मे तो निपुण थे ही। दो ही चार मुलाकातों में उनका सिक्का जम गया। इस परिचय ने शीघ्र ही मित्रता का रूप धारण किया। एक दिन दीवान साहब के साथ रानी जगदीशपुर के दरबार में जा पहुँचे और ऐसी लच्छेदार बातें की, अपनी तहसीलदारी की ऐसी ज़ीट उडाई कि रानीजी मुग्ध हो गईं ! कोई क्या तहसीलदारी करेगा ! जिस इलाके मे मैं था, वहाँ के आदमी आज तक मुझे याद करते है। डींग नहीं मारता ; डींग मारने की मेरी आदत नही ; लेकिन जिस इलाके में मुश्किल से ४० हज़ार वसूल होता था, उसी इलाके से साल के अन्दर मैने दो लाख वसूल करके दिखा दिया और लुत्फ़ यह कि किसी को हिरासत मे रखने या कुरकी करने की ज़रूरत नही पडी।

ऐसे कार्य-कुशल आदमी की सभी जगह ज़रूरत रहती है। रानी ने सोचा, इस आदमी को रख लूँ तो इलाके की आमदनी बढ जाय। ठाकुर साहब से सलाह की। यहाँ तो पहले ही से सारी बातें सधी-बधी थीं। ठाकुर साहब ने रंग और भी चोखा कर दिया। उनके दोस्तों में यही ऐसे थे, जिन पर लौंगी की असीम कृपा-दृष्टि थी। दूसरी ही सलामी मे मुंशीजी को २५) मासिक की तहसीलदारी मिल गई। मुँह-माँगी मुराद पूरी हुई। सवारी के लिए घोडा भी मिल गया। सोने में सुहागा हो गया।

अब मुंशीजी की पाँचों घी मे थीं ! जहाँ महीने मे एक बार भी

महफ़िल न जमने पाती थी, वहाँ अब तीसों दिन जमघट होने लगा। इतने बड़े अहलकार के लिए शराब की क्या कमी। कभी इलाके पर चुपके से दस-बीस बोतलें खिंचवा लेते, कभी शहर के किसी कलवार पर धौंस जमाकर दो-चार बोतल ऐंठ लेते। बिना हर्र-फिटकरी रंग चोखा हो जाता था। एक कहार भी नौकर रख लिया और ठाकुर साहब के घर से दो-चार कुरसियाँ उठवा लाये। उनके हौसले बहुत ऊँचे न थे, केवल एक भले आदमी की भाँति जीवन व्यतीत करना चाहते थे। इस नौकरी ने उनके हौसले को बहुत कुछ पूरा कर दिया, लेकिन यह जानते थे कि इस नौकरी का कोई ठिकाना नहीं। रईसों का मिज़ाज एक-सा नहीं रहता। मान लिया, रानी साहब के साथ निभ ही गई, तो कै दिन। नये राजा साहब आते ही पुराने नौकरों को निकाल बाहर करेंगे। जब दीवान साहब ही न रहेंगे, तो मेरी क्या हस्ती! इसलिए इन्होंने पहले ही से नये राजा साहब के यहाँ आना-जाना शुरू कर दिया था। इनका नाम ठाकुर विशालसिंह था। रानी साहब के चचेरे देवर होते थे। उनके दादा दो भाई थे। बड़े भाई रियासत के मालिक थे। उन्हीं के वंशजों ने दो पीढ़ियों तक राज्य का आनन्द भोगा था। अब रानी के निस्संतान होने के कारण विशालसिंह के भाग्य उदय हुए थे। दो-चार गाँव जो उनके दादा को गुज़ारे के लिए मिले थे, उन्हीं को रेहन-बय करके इन लोगों ने ५० वर्ष काट दिये थे, यहाँ तक कि विशालसिंह के पास अब इतनी भी सम्पत्ति न थी कि गुजर-बसर के लिए काफ़ी होती। उस पर कुल-मर्यादा का पालन करना आवश्यक था। वह महारानी के पट्टीदार थे और इस हैसियत का निर्वाह करने के लिए उन्हें नौकर-चाकर, घोड़ा-गाड़ी सभी कुछ रखना पड़ता था। अभी तक परम्परा की नकल होती चली आती थी। दशहरे के दिन उत्सव ज़रूर मनाया जाता, जन्माष्टमी के दिन ज़रूर धूमधाम होती।

प्रातःकाल था, माघ की ठंड पड़ रही थी। मुन्शीजी ने गरम पानी

से स्नान किया और चौकी से उतरे। मगर खड़ाऊँ उलटे रखे हुए थे। कहार खड़ा था कि यह जायँ तो धोती छाँटूँ! मुंशीजी ने उलटे खड़ाऊँ देखे, तो कहार को डाटा—तुझसे कितनी बार कह चुका कि खड़ाऊँ सीधे रखा कर। तुझे याद क्यों नही रहता? बता, उलटे खड़ाऊँ पर कैसे पैर रखूँ। आज तो मै छोड़े देता हूँ; लेकिन कल जो तूने उलटे खड़ाऊँ रखे, तो इतना पीटूँगा कि तू भी याद करेगा।

कहार ने काँपते हुए हाथों से खड़ाऊँ सीधे कर दिये।

निर्मला ने हलुवा बना रखा था। मुंशीजी आकर एक कुरसी पर बैठ गये और जलता हुआ हलुआ मुँह मे डाल लिया। बारे किसी तरह उसे निगल गये और आँखो से पानी पोंछते हुए बोले—तुम्हारा कोई काम ठीक नही होता। जलता हुआ हलुवा सामने रख दिया। आखिर मेरा मुँह जलाने से तुम्हे कुछ मिल तो नही गया!

निर्मला—ज़रा हाथ से देख क्यो न लिया?

वज्रधर—वाह, उलटा चोर कोतवालै डाँटे! मुझी को उल्लू बनाती हो। तुम्हें खुद सोच लेना था कि जलता हुआ हलुवा खा गये, तो मुँह की क्या दशा होगी, लेकिन तुम्हें क्या परवा! लल्लू कहाँ है?

निर्मला—लल्लू मुझसे कहके कही जाते है? पहर रात रहे, न-जाने किधर चले गये। जाने कहीं किसानो की सभा होनेवाली है। वहीं गये है।

वज्रधर—वहाँ दिन-भर भूखो मरेगा! न-जाने इसके सिर से यह भूत कब उतरेगा? मुझसे कल दारोग़ाजी कहते थे, आप लड़के को सँभालिये, नही तो धोखा खाइयेगा। समझ मे नही आता, क्या करूँ। मेरे इलाके के आदमी भी इन सभाओ मे अब जाने लगे है और मुझे ख़ौफ हो रहा है कि कही रानी साहब के कानो मे भनक पड़ गई, तो मेरे सिर हो जायँगी! मै यह तो मानता हूँ कि अहलकार लोग ग़रीबो को बहुत सताते है; मगर किया क्या जाय, सताये बग़ैर काम भी तो नहीं चलता। आखिर उनका गुज़र-बसर कैसे हो? किसानो को समझाना बुरा नहीं; लेकिन आग मे कूदना तो बुरी बात है। मेरी तो सुनने की

उसने क़सम खा ली है ; मगर तुम क्यों नहीं समझाती।

निर्मला—जो आग मे कूदेगा आप जलेगा, मुझे क्या करना है। उससे बहस कौन करे। आज सवेरे-सवेरे कहाँ जा रहे हो ?

वज्रधर—ज़रा ठाकुर विशालसिंह के यहाँ जाता हूँ।

निर्मला—दोपहर तक तो लौट आओगे न ?

वज्रधर—हाँ, अगर उन्होने छोडा। मुझे देखते ही टूट पडते हैं, तरह-तरह की ख़ातिर करने लगते है, दूध लाओ, मेवे लाओ, जान ही नही छोडते। तीनो औरतों का किस्सा छेड देते है। बडे ही मिलनसार आदमी है। मंगला क्या अभी तक सो रही है ?

निर्मला हाँ, जगाके हार गई, उठती ही नहीं।

वज्रधर—यह तो बुरी बात है। बहू-बेटियो का इतने दिन चढ़े तक सोना क्या मानी ?

यह कहकर मुन्शीजी ने लोटे का पानी उठाया और जाकर मंगला के ऊपर डाल दिया। निर्मला 'हाँ-हां' करती रह गई। पानी पडते ही मंगला हडबडाकर उठी और यह समझकर कि वर्षा हो रही है, कोठरी में घुस गई, सरदी के मारे कांप रही थी।

निर्मला—सवेरे-सवेरे लेके नहला दिया !

वज्रधर—यह सब तुम्हारे लाड-प्यार का फल है। खुद दोपहर तक सोती हो, वही आदतें लडकों को भी सिखाती हो ?

निर्मला—स्वभाव सबका अलग-अलग होता है। न कोई किसी के बनाने से बनता है, न बिगाडने से बिगडता है। मा-बाप को देखकर लडको का स्वभाव बदल जाता, तो लल्लू कुछ और ही होता। तुम्हें पिये बिना एक दिन चैन नहीं आता, उसे भी कभी पीते देखा है ? यह सब कहने की बातें है कि लडके मां-बाप की आदतें सीखते है।

वज्रधर ने इसका कुछ जवाब न दिया। कपडे पहने, बाहर घोड़ा तैयार था ; उस पर बैठे और शिवपुर चले।

जब वह ठाकुर साहब के मकान पर पहुँचे, तो आठ बज गये थे।

ठाकुर साहब धूप में बैठे एक पत्र पढ रहे थे। बडा तेजस्वी मुख था। वह एक काला दुशाला ओढे हुए थे, जिस पर समय के अत्याचार के चिह्न दिखाई दे रहे थे। इस दुशाले ने उनके गोरे रङ्ग को और भी चमका दिया था।

मुन्शीजी ने मोढे पर बैठते हुए कहा—सब कुशल-आनन्द है न ?

ठाकुर—जी हाँ, ईश्वर की दया है। कहिये, दरबार के क्या समाचार हैं ?

यद्यपि ठाकुर साहब रानी के सम्बन्ध मे कुछ पूछना ओछापन समझते थे , पर इस विषय से उन्हें इतना प्रेम था कि बिना पूछे रहा न जाता था।

मुन्शीजी ने मुस्कराकर कहा—सब वही पुरानी बाते है। डॉक्टरो के पौ बारह है। दिन मे तीन-तीन डाक्टर आते है।

ठाकुर—क्या शिकायत है ?

मुंशी—बुढापे की शिकायत क्या कम है ! यह तो असाध्य रोग है।

ठाकुर—उन्हें तो और मनाना चाहिये कि किसी तरह इस माया-जाल से छूट जायँ। दवा-दर्पन की अब क्या ज़रूरत है। इतने दिन राज-सुख भोग चुकीं ; पर अब भी जी नही भरा !

मुन्शी—वह तो अभी अपने को मरने लायक नही समझतीं। रोज जगदीशपुर से १६ कहार पालकी उठाने के लिए बेगार पकडकर आते हैं। वैद्यजी को लाना और ले जाना उनका काम है।

ठाकुर—अन्धेर है और कुछ नही ! पुराने जमाने मे तो खैर सस्ता समय था, जो दो-जार पैसे मज़दूरों को मिल जाते थे, वही खाने-भर को बहुत थे। आजकल तो एक आदमी का पेट भरने को एक रुपया चाहिये। यह महा अन्याय है। बेचारी प्रजा तबाह हुई जाती है। आप देखेंगे कि मै इस प्रथा को क्योंकर जड से उठा देता हूँ।

मुन्शी—आपसे लोगों को बडी-बडी आशाएँ है। चमारों पर भी यही आफ़त है। दस-बारह चमार रोज़ साईसी करने के लिए पकड

बुलाये जाते हैं। सुना है, इलाके भर के चमारो ने पंचायत की है कि जो साईसी करे, उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाय। अब या तो चमारो को इलाका छोडना पडेगा, या दीवान साहब को साईस नौकर रखने पडेगे।

ठाकुर—चमारो को इलाके से निकालना दिल्लगी नही है! यह लोग समझते है कि अभी वही दुनिया है, जो बाबा आदम के जमाने मे थी। चारो तरफ़ देखते है कि ज़माना पलट गया, यहाँ तक कि किसान और मज़दूर राज्य करने लगे, पर अब भी लोगो की आँखे नही खुलती। इस देश से न जाने कब यह प्रथा मिटेगी। प्रजा तबाह हुई जाती है। आप देखेंगे, मै रियासत को क्या से क्या कर दिखाता हूँ। काया-पलट कर दूँगा। सुनता हूँ, पुलिस आये दिन इलाके मे तूफ़ान मचाती रहती है। मै पुलिस को वहाँ कदम न रखने दूँगा। इन ज़ालिमो के हाथों प्रजा तबाह हुई जाती है।

मुन्शी—सडकें इतनी ख़राब हो गई है कि एक्के-गाडी का गुजर ही नही हो सकता।

ठाकुर—सडको को दुरुस्त करना मेरा पहला काम होगा। मोटर-सर्विस जारी कर दूँगा, जिसमे मुसाफिरो को स्टेशन से जगदीशपुर जाने मे सुविधा हो। इलाके मे लाखो बीघे ऊख बोई जाती है और उसका गुड या राब बनती है। मेरा इरादा है कि एक शक्कर की मिल खोल दूँ और एक अँगरेज़ को उसका मैनेजर बना दूँ। मै तो इन लोगों के सुप्रबन्ध का कायल हूँ। हिन्दुस्तानियो पर कभी विश्वास न करे, भूलकर भी नही। ये इलाके को तबाह कर देते है। शेख़ी नही मारता, इलाके मे एक बार राम-राज्य स्थापित कर दूँगा, कचन बरसने लगेगा। आपने किसी महाजन को ठीक किया?

मुन्शी—हाँ, कई आदमियो से मिला था और वे बडी खुशी से रुपए देने पर तैयार है, केवल यही चाहते है कि ज़मानत के तौर पर कोई गांव लिख दिया जाय।

ठाकुर—आपने हामी तो नहीं भर ली ?

मुंशी—जी नहीं, हामी तो नहीं भरी, लेकिन बग़ैर ज़मानत के रुपए मिलना मुश्किल मालूम होता है।

ठाकुर—तो जाने दीजिये। कोई ज़रूरत ऐसी नहीं है, जो टाली न जा सके। अगर कोई मेरे विश्वास पर रुपए दे तो दे दे, लेकिन रियासत की इञ्च-भर ज़मीन भी रेहन नहीं कर सकता। मैं फ़ाके करूँ, बिक जाऊँ; लेकिन रियासत पर आँच न आने दूँगा। हाँ, इसका वादा करता हूँ कि रियासत मिलने के साल-भर बाद कौडी-कौडी सूद के साथ चुका दूँगा। सच्ची बात तो यह है कि मुझे पहले ही मालूम था कि इस शर्त पर कोई महाजन रुपए देने पर राज़ी न होगा। ये बला के चघड होते हैं। मुझे तो इनके नाम से चिढ है। मेरा वश चले, तो आज इन सबों को तोप पर उडा दूँ। जितना डर मुझे इनसे लगता है, उतना साँप से भी नहीं लगता। इन्हीं के हाथों आज मेरी यह दुर्गति है, नहीं तो इस गई-बीती दशा में भी आदमी होता। इन नर-पिशाचों ने सारा रक्त चूस लिया। पिताजी ने केवल पाँच हज़ार लिये थे जिसके पचास हज़ार हो गये और मेरे तीन गाँव जो इस वक्त दो लाख को सस्ते थे, नीलाम हो गये। पिताजी का मुझे यह अन्तिम उपदेश था कि कर्ज़ कभी मत लेना। इसी शोक में उन्होंने देह त्याग दी।

यहाँ अभी यही बातें हो रही थीं कि ज़नानख़ाने में से कलह-शब्द आने लगे। मालूम होता था, कई स्त्रियों में संग्राम छिडा हुआ है। ठाकुर साहब ये कर्कश शब्द सुनते ही विकल हो गये, उनके माथे पर बल पड गये, मुख तेजहीन हो गया। यही उनके जीवन की सबसे दारुण व्यवस्था थी। यही काँटा था, जो नित्य उनके हृदय में खटका करता था। उनकी बडी स्त्री का नाम वसुमती था। वह अत्यन्त गर्वशीला थी; नाक पर मक्खी भी न बैठने देती। उनकी तलवार सदैव म्यान से बाहर रहती थी। वह अपनी सपत्नियों पर उसी भाँति शासन करना

चाहती थी, जैसे कोई सास अपनी बहुओं पर करती है। वह यह भूल जाती थीं कि ये उनकी बहुएँ नहीं, सपत्नियाँ हैं। जो उनकी 'हाँ मे हाँ' मिलाता, उस पर प्राण देती थी, किन्तु उनकी इच्छा के विरुद्ध ज़रा भी कोई बात हो जाती तो सिंहनी का विकराल रूप धारण कर लेती थी।

दूसरी स्त्री का नाम रामप्रिया था। यह रानी जगदीशपुर की सगी बहन थीं। उनके पिता पुराने खिलाड़ी थे, दोदस्ती झाड़ते थे, दोधारी तलवार से लड़ते थे। रामप्रिया दया और विनय की मूर्ति थीं, बड़ी विचार-शील और वाक्य-मधुर। जितना कोमल अङ्ग था, उतना ही कोमल हृदय भी था। वह घर से इस तरह रहती थी, मानो थीं ही नही। उन्हें पुस्तकों से विशेष रुचि थी, हरदम कुछ-न-कुछ पढ़ा-लिखा करती थी। सबसे अलग-विलग रहती थी, न किसी के लेने मे, न देने में, न किसी से विशेष वैर न विशेष प्रेम।

तीसरी महिला का नाम रोहिणी था। ठाकुर साहब का उन पर विशेष प्रेम था, और वह भी प्राणपण से उनकी सेवा करती थी। इसमें प्रेम की मात्रा अधिक थी या माया की, इसका निर्णय करना कठिन था। उन्हें यह असह्य था कि ठाकुर साहब उनकी सौतों से बात-चीत भी करें। वसुमती कर्कशा होने पर भी मलिन-हृदय न थी, जो कुछ मन में होता वही मुख मे। एक बार मुँह से बात निकाल डालने पर फिर उसके हृदय पर उसका कोई चिह्न न रहता था। रोहिणी द्वेष को पालती थी, जैसे चिड़िया अपने अण्डे को सेती है। वह जितना मुँह से कहती थी, उससे कही अधिक मन मे रखती थी।

ठाकुर साहब ने अन्दर जाकर वसुमती से कहा—तुम घर मे रहने दोगी या नही। ज़रा भी शरम-लिहाज नहीं कि बाहर कौन बैठा हुआ है; बस जब देखो, संग्राम मचा रहता है। इस ज़िन्दगी से तङ्ग आ गया। सुनते-सुनते कलेजे में नासूर पड गये।

वसुमती—कर्म तो तुमने किये हैं, भोगेगा कौन ?

ठाकुर—तो ज़हर दे दो। जला-जलाकर मारने से क्या फायदा !

वसुमती—क्या वह महारानी लड़ने के लिए कम थीं कि तुम उनका पक्ष लेकर आ दौड़े ! पूछते क्यों नहीं, क्या हुआ जो तीरों की बौछार करने लगीं ?

रोहिणी—आप चाहती हैं कि मैं कान पकड़कर उठाऊँ या बैठाऊँ, तो यहाँ कुछ आपके गाँव में नहीं बसी हूँ। क्यों कोई आपसे थर-थर काँपा करे !

ठाकुर—आख़िर कुछ मालूम तो हो, क्या बात हुई ?

रोहिणी—वही हुई, जो रोज़ होती है। मैंने हिरिया से कहा, ज़रा मेरे सिर में तेल डाल दे। मालकिन ने उसे तेल डालते देखा, तो आग हो गईं। तलवार खींचे हुए आ पहुँचीं और उसका हाथ पकड़कर खींच ले गईं। आज आप निश्चय कर दीजिये कि हिरिया उन्हीं की लौंडी है, या मेरी भी। यह निश्चय किये बिना आप यहाँ से न जाने पायेंगे।

वसुमती—वह क्या निश्चय करेंगे, निश्चय मैं करूँगी। हिरिया मेरे साथ मेरे नैहर से आई है और मेरी लौंडी है। किसी दूसरे का उस पर कोई दावा नहीं है।

रोहिणी—सुना आपने ! हिरिया पर किसी का दावा नहीं है वह अकेली उन्हीं की लौंडी है !

ठाकुर—हिरिया इस घर में रहेगी, तो उसे सबका काम करना पड़ेगा !

वसुमती यह सुनकर जल उठी। नागिन की भाँति फुंकारकर बोली—इस वक्त तो आपने चहेती रानी की ऐसी डिग्री कर दी, मानो यहाँ उन्हीं का राज्य है। ऐसे ही न्यायशील होते तो संतान का मुँह देखने को न तरसते !

ठाकुर साहब को ये शब्द बाण-से लगे। कुछ जवाब न दिया।

बाहर आकर कई मिनट तक मर्माहत दशा में बैठे रहे। वसुमती इतनी मुँहफट है, यह उन्हें आज मालूम हुआ। सोचा, मैंने तो कोई ऐसी बात न कही थी जिस पर वह इतना झल्ला जाती। मैंने क्या बुरा कहा कि हिरिया को सबका काम करना पड़ेगा। अगर हिरिया केवल उसी का काम करती है, तो दो महरियाँ और रखनी पड़ती हैं। क्या वसुमती इतना भी नहीं समझती। ताना ही देना था, तो और कोई लगती हुई बात कह देती। यह तो कठोर-से-कठोर आघात है, जो वह मुझ पर कर सकती थी। ऐसी स्त्री का तो मुँह न देखना चाहिये।

सहसा उन्हें एक बात सूझी। मुंशीजी से बोले—ज्योतिष की भविष्य-वाणी के विषय में आपके क्या विचार हैं? क्या वह हमेशा सच निकलती है?

मुंशीजी असमंजस मे पड़े कि इसका क्या जवाब दूँ। कैसा जवाब रुचिकर होगा—यह उनकी समझ में न आया। अँधेरे में टटोलते हुए बोले—यह तो उसी विद्या के विषय मे कहा जा सकता है, जहाँ अनुमान से काम न लिया जाय। ज्योतिष मे बहुत कुछ पूर्व अनुभव और अनुमान ही से काम लिया जाता है।

ठाकुर—बस, ठीक यही मेरा विचार है। अगर ज्योतिष मुझे धनी बतलाये, तो यह आवश्यक नहीं कि मैं धनी हो जाऊँ। ज्योतिष के धनी कहने पर भी सम्भव है कि मैं ज़िन्दगी-भर कौडियों को मुहताज रहूँ। इसी भाँति ज्योतिष का दरिद्र लक्ष्मी का कृपा-पात्र भी हो सकता है, क्यों?

मुंशीजी को अब भी पांव जमाने को भूमि न मिली। संदिग्ध भाव से बोले—हाँ, ज्योतिष की धारणा जब अनुष्ठानों से बदली जा सकती है, तो उसे विधि का लेख क्यों समझा जाय?

ठाकुर साहब ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—अनुष्ठानो पर आपका विश्वास है? मुंशीजी को ज़मीन मिल गई। बोले—अवश्य!

विशालसिंह यह तो जानते थे कि अनुष्ठानो से शंकाओं का निवारण

होता है। शनि, राहु आदि का शमन करने के अनुष्ठानों से परिचित थे। बहुत दिनों से मंगल का व्रत भी रखते थे ; लेकिन इन अनुष्ठानों पर अब उन्हें विश्वास न था। वह कोई ऐसा अनुष्ठान करना चाहते थे, जो किसी तरह निष्फल ही न हो। पूछा—आप यहाँ किसी विद्वान् ज्योतिषी से परिचित हों, तो कृपा करके उन्हें मेरे यहाँ भेज दीजियेगा। मुझे एक विषय में उनसे कुछ पूछना है।

मुंशी—आज ही लीजिये, यहाँ एक-से-एक बढ़कर ज्योतिषी पड़े हुए हैं। आप मुझे कोई ग़ैर न समझिये। जब, जिस काम की इच्छा हो, मुझे कहला भेजिये। सिर के बल दौड़ा आऊँगा। बाज़ार से कोई चीज़ मँगानी हो, मुझे हुक्म दीजिये, किसी वैद्य-हकीम की ज़रूरत हो, मुझे सूचना दीजिये। मैं तो जैसे महारानीजी को समझता हूँ, वैसे ही आपको समझता हूँ।

ठाकुर—मुझे आपसे ऐसी ही आशा है। ज़रा रानी साहबा का कुशल-समाचार जल्द-जल्द भेजियेगा। वहाँ आपके सिवा मेरा और कोई नहीं है। आप ही के ऊपर मेरा भरोसा है। ज़रा देखियेगा कोई चीज़ इधर-उधर न होने पाये, यार लोग नोच-खसोट न शुरू कर दें।

मुंशी—आप इससे निश्चिन्त रहें। मैं देख-भाल करता रहूँगा।

ठाकुर—हो सके तो ज़रा यह पता भी लगाइयेगा कि रानीजी ने कहाँ-कहाँ से कितने रुपए क़र्ज़ लिये हैं।

मुन्शी—समझ गया, यह तो सहज ही में मालूम हो सकता है।

ठाकुर—ज़रा इसका पता भी लगाइयेगा कि आजकल उनका भोजन कौन बनाता है। पहले तो उनके मैके ही की कोई स्त्री थी। मालूम नहीं, अब भी वही बनाती है या कोई दूसरा रसोइया रखा गया है।

वज्रधरसिंह ने ठाकुर साहब के मन का भाव ताड़कर दृढ़ता से कहा—महाराज, क्षमा कीजियेगा, मैं आपका सेवक हूँ, पर रानीजी का भी सेवक हूँ। उनका शत्रु नहीं हूँ। आप और वह दोनों सिंह और

सिंहिनी की भाँति लड़ सकते हैं। मैं गीदड़ की भाँति अपने स्वार्थ के लिए बीच में कूदना अपमान-जनक समझता हूँ। मैं वहाँ तक सहर्ष आपकी सेवा कर सकता हूँ, जहाँ तक रानीजी का अहित न हो। मैं तो दोनो ही द्वारो का भिक्षुक हूँ।

ठाकुर साहब दिल से शरमाये पर इसके साथ ही मुंशीजी पर उनका विश्वास और भी दृढ हो गया। बात बनाते हुए बोले—नही-नही, मेरा मतलब आपने गलत समझा। छी! छी! मै इतना नीच नही हूँ। मै केवल इसलिए पूछता था कि नया रसोइया कुलीन है या नहीं। अगर वह सुपात्र है, तो वही मेरा भी भोजन बनाता रहेगा।

ठाकुर साहब ने बात तो बनाई, पर उन्हें स्वयं ज्ञात हो गया कि बात बनी नहीं। अपनी झेंप मिटाने को वह एक समाचार-पत्र देखने लगे, मानो उन्हें विश्वास हो गया कि मुन्शीजी ने उनकी बात सच मान ली।

इतने मे हिरिया ने आकर मुन्शीजी से कहा—बाबा, मालकिन ने कहा है कि आप जाने लगें, तो मुझसे मिल लीजियेगा।

ठाकुर साहब ने गरजकर कहा—ऐसी क्या बात है, जिसको कहने की इतनी जल्दी है। इन बेचारो को देर हो रही है, कुछ निठल्ले थोड़े ही हैं कि बैठे-बैठे औरतों का रोना सुना करें। जा अन्दर बैठ।

यह कहकर ठाकुर साहब उठ खड़े हुए, मानो मुन्शीजी को विदा कर रहे है। वह वसुमती को उनसे बाते करने का अवसर न देना चाहते थे। मुन्शीजी को भी अब विवश होकर विदा माँगनी पड़ी।

मुन्शीजी यहाँ से चले, तो उनके मन में यह शङ्का समाई हुई थी कि ठाकुर साहब कहीं मुझसे नाराज़ तो नही हो गये। हाँ, इतना संतोष था कि मैने कोई बुरा काम नही किया। यदि वह सच्ची बात कहने के लिए नाराज़ हो जाते है, तो हो जायँ। मै क्यो रानी साहब का बुरा चीतूँ। बहुत होगा राजा होने पर मुझे जवाब दे देंगे। इसकी क्या चिंता। इस विचार से मुंशीजी और अकड़कर घोड़े पर बैठ गये। वह

इतने खुश थे, मानो हवा में उड़े जा रहे हैं। उनकी आत्मा कभी इतनी गौरवोन्मत्त न हुई थी। चिन्ताओं को कभी उन्होंने इतना तुच्छ न समझा था।

७

चक्रधर की कीर्ति उनसे पहले ही बनारस पहुँच चुकी थी। उनके मित्र और अन्य लोग उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो रहे थे। बार-बार आते थे और पूछकर लौट जाते थे। जब वह पाँचवें दिन घर पहुँचे, तो लोग मिलने और बधाई देने आ पहुँचे। नगर का सभ्य-समाज मुक्तकंठ से उनकी तारीफ कर रहा था। यद्यपि चक्रधर गंभीर आदमी थे; पर अपनी कीर्ति की प्रशंसा से उन्हें सच्चा आनन्द मिल रहा था। मुसलमानों की संख्या के विषय में किसी को भ्रम होता, तो वह तुरत उसे ठीक कर देते थे—एक हजार! अजी पूरे पाँच हज़ार आदमी थे और सभी की त्योरियाँ चढ़ी हुईं! मालूम होता था, मुझे खड़ा निगल जायँगे। जान पर खेल गया था और क्या कहूँ। कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्हें चक्रधर की वह अनुनय-विनय अपमानजनक जान पड़ती थी। उनका खयाल था कि इससे तो मुसलमान और भी शेर हो गये होंगे। इन लोगों से चक्रधर को घण्टों बहस करनी पड़ी, पर वे कायल न हुए। मुसलमानों में भी चक्रधर की तारीफ हो रही थी। दो-चार आदमी मिलने भी आये; लेकिन हिन्दुओं का जमघट देखकर लौट गये।

और लोग तो तारीफ़ कर रहे थे, पर मुन्शी वज्रधर लड़के की नादानी पर बिगड़ रहे थे। तुम्हीं को क्यों यह भूत सवार हो जाता है। क्या तुम्हारी ही जान सस्ती है? तुम्हीं को अपनी जान भारी पड़ी है?

क्या वहाँ और लोग न थे, फिर तुम क्यों आग मे कूदने गये ? मान लो मुसलमानों ने हाथ चला दिया होता, तो क्या करते ? फिर तो कोई साहब पास न फटकते ! यह हज़ारों आदमी जो आज खुशी के मारे फूले नहीं समाते, बात तक न पूछते । निर्मला तो इतनी बिगडी कि चक्रधर से बात न करनी चाहती थी ।

शाम को चक्रधर मनोरमा के घर गये । वह बगीचे मे दौड-दौडकर हज़ारे से पौदों को सींच रही थी । पानी से कपडे लत-पत हो गये थे । उन्हें देखते ही हज़ारा फेंककर दौडी और पास आकर बोली—आप कब आये बाबूजी ? मै पत्रों में रोज वहाँ का समाचार देखती थी और सोचती थी कि आप यहाँ आयेंगे तो आपकी पूजा करूँगी । आप न होते, तो वहाँ ज़रूर दगा हो जाता । आपको बिगडे हुए मुसलमानों के सामने अकेले जाते हुए ज़रा भी शका न हुई ?

चक्रधर ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—ज़रा भी नहीं । मुझे तो यही धुन थी कि इस वक्त कुरबानी न होने दूँगा, इसके सिवा दिल मे और कोई ख़याल न था । अब सोचता हूँ तो आश्चर्य होता है कि मुझ मे इतना बल और साहस कहाँ से आ गया । मै तो यही कहूँगा कि मुसलमानों को लोग नाहक बदनाम करते हैं । फ़िसाद से वे भी उतना ही डरते है, जितना हिन्दू ! शान्ति की इच्छा भी उनमे हिन्दुओं से कम नहीं है । लोगों का यह ख़याल कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं, बिलकुल ग़लत है । मुसलमानों को केवल यह शंका हो गई है कि हिन्दू उनसे पुराना वैर चुकाना चाहते हैं और उनकी हस्ती को मिटा देने की फ़िक्र कर रहे हैं । इसी भय से वे ज़रा-ज़रा-सी बात पर तिनक उठते हैं और मरने-मारने पर आमादा हो जाते हैं ।

मनोरमा—मैंने तो जब पढा कि आप उन बौखलाये हुए आदमियों के सामने नि.शंक भाव से खडे थे, तो मेरे रोंगटे खडे हो गये । आगे पढने की हिम्मत न पडती थी कि कहीं कोई बुरी ख़बर न हो ।

मनोरमा—जानती हूँ, लेकिन कहीं सुधार हो रहा है। माता-पिता धन देखकर लट्टू हो जाते हैं। इच्छा अस्थायी है, मानती हूँ; लेकिन एक बार अनुमति देने के बाद फिर लड़की को पछताने के लिए कोई हीला नहीं रहता।

चक्रधर—अपने मन को समझाने के लिए तर्कों की कभी कमी नहीं रहती मनोरमा! कर्तव्य ही ऐसा आदर्श है, जो कभी धोखा नहीं दे सकता।

मनोरमा—हाँ, लेकिन आदर्श आदर्श ही रहता है, यथार्थ नहीं हो सकता। (मुस्कराकर) आप ही का विवाह किसी कानी, काली-कलूटी स्त्री से हो जाय, तो क्या आपको दुःख न होगा? बोलिये! क्या आप समझते हैं कि लड़की का विवाह किसी खूसट से हो जाता है, तो उसे दुःख नहीं होता। उसका बस चले, तो वह पति का मुँह न देखे। लेकिन, इन बातों को जाने दीजिये, वधूजी बहुत सुन्दर हैं?

चक्रधर ने बात टालने के लिए कहा—सुन्दरता मनोभावों पर निर्भर होती है। माता अपने कुरूप बालक को भी सुन्दर समझती है।

मनोरमा—आप तो ऐसी बातें कर रहे हैं, जैसे भागना चाहते हो। क्या माता किसी सुन्दर बालक को देखकर यह नहीं सोचती कि मेरा बालक भी ऐसा ही होता!

चक्रधर ने लज्जित होकर कहा—मेरा आशय यह न था। मैं यह कहना चाहता था कि सुन्दरता के विषय में सब की राय एक-सी नहीं हो सकती।

मनोरमा—आप फिर भागने लगे। मैं जब आपसे यह प्रश्न करती हूँ, तो उसका साफ मतलब यह है कि आप उन्हें सुन्दर समझते हैं या नहीं?

चक्रधर लज्जा से सिर झुकाकर बोले—ऐसी बुरी तो नहीं है।

मनोरमा—तब तो आप उन्हें खूब प्यार करेंगे!

चक्रधर—प्रेम केवल रूप का भक्त नहीं होता।

सहसा घर के अन्दर से किसी के कर्कश शब्द कान मे आये, फिर लौंगी का रोना सुनाई दिया। चक्रधर ने पूछा—यह तो लौंगी रो रही है ?

मनोरमा—जी हां ! आपसे तो भाई साहब से भेट नही हुई। गुरुसेवकसिंह नाम है। कई महीनो से देहात मे ज़मीदारी का काम करते हैं। है तो मेरे सगे भाई और पढे-लिखे भी खूब है, लेकिन भलमनसी छू भी नहीं गई। जब आते है, लौंगी अम्मा से भूठमूठ तकरार करते है। न-जाने उससे इन्हें क्या अदावत है।

इतने मे गुरुसेवकसिंह लाल-लाल आंखे किये निकल आये और मनोरमा से बोले—बाबूजी कहां गये है, तुझे मालूम है कब तक आयेंगे ? मै आज फैसला कर लेना चाहता हूँ !

गुरुसेवकसिंह की उम्र २५ वर्ष से अधिक न थी। लम्बे, छरेरे, रूपवान् आदमी थे, आंखो पर ऐनक थी, मुँह मे पान का बीडा, देह पर तनजेब का कुरता, मांग निकली हुई। बहुत शौकीन आदमी थे।

चक्रधर को बैठे देखकर वह कुछ झिझके और अन्दर लौटना चाहते थे कि लौंगी रोती हुई आकर चक्रधर के पास खडी हो गई और बोली—बाबूजी, इन्हें समझाइये कि मै अब बुढ़ापे में कहां जाऊँ। इतनी उम्र तो इस घर मे कटी, अब किसके द्वार पर जाऊँ। जहां इतने नौकरों-चाकरों के लिए खाने को रोटियां है, वहां मेरे लिए एक टुकडा भी नही ? बाबूजी, सच कहती हूँ, मैने इन्हें अपना दूध पिलाकर पाला है, मालकिन के दूध न होता था और अब यह मुझे घर से निकालने पर तुले हुए हैं।

गुरुसेवकसिंह की इच्छा तो न थी कि चक्रधर से इस कलह के सम्बन्ध मे कुछ कहें ; लेकिन जब लौंगी ने उन्हें पक्ष बनाने मे सङ्कोच न किया तो वह भी खुल पडे। बोले—महाशय, इससे यह पूछिये कि अब यह बुढिया हुई, इसके मरने के दिन आये, क्यों नही किसी तीर्थस्थान में जाकर अपने कलुषित जीवन के बचे हुए दिन काटती।

मैने दादाजी से कहा था कि इसे वृन्दावन पहुँचा दीजिये और वह तैयार भी हो गये थे ; पर इसने सैकड़ों बहाने किये और वहाँ न गई। आपसे तो अब कोई परदा नहीं है, इसके कारण मैंने यहाँ रहना छोड़ दिया। इसके साथ इस घर मे रहते हुए मुझे लज्जा आती है। इसे इसकी ज़रा भी परवा नहीं कि जो लोग सुनते होंगे, दिल में क्या कहते होंगे। हमें कहीं मुँह दिखाने की जगह नहीं रही। मनोरमा अब सयानी हुई। इसका विवाह करना है या नहीं। इसके घर में रहते हुए हम किस भले आदमी के द्वार पर जा सकते है? मगर इसे इन बातों की बिलकुल चिन्ता नहीं, बस मरते दम तक घर की स्वामिनी बनी रहना चाहती है। दादाजी भी सठिया गये है; उन्हें मानापमान की ज़रा भी फिक्र नहीं, इसने उन पर न-जाने क्या मोहिनी डाल दी है कि इसके पीछे मुझसे लड़ने पर तैयार रहते है। आज मै निश्चय करके आया हूँ कि इसे घर के बाहर निकालकर छोड़ूँगा। या तो यह किसी दूसरे मकान में रहे, या किसी तीर्थ-स्थान को प्रस्थान करे।

लौंगी—तो बच्चा सुनो, जब तक मालिक जीता है, लौंगी इसी घर मे रहेगी और इसी तरह रहेगी! जब वह न रहेगा, तो जो कुछ सिर पर पड़ेगी झेल लूँगी। जो तुम चाहो कि लौंगी गली-गली ठोकर खाये, तो यह न होगा! मै लौंडी नहीं हूँ कि घर से बाहर जाकर रहूँ, तुम्हें यह कहते लज्जा नहीं आती? चार भाँवरें फिर जाने से ही व्याह नहीं हो जाता। मैंने अपने मालिक की जितनी सेवा की है और करने को तैयार हूँ, उतनी कौन व्याहता करेगी! लाये तो हो वहू, कभी उठकर एक लुटिया पानी देती है? खाई है कभी उसकी बनाई कोई चीज़? नाम से कोई व्याहता नहीं होती, सेवा और प्रेम से होती है।

गुरुसेवक—यह तो मै जानता हूँ कि तुझे बातें बहुत करनी आती है; पर अपने मुँह से जो चाहे बन, मै तो तुझे लौंडी ही समझता हूँ।

लौंगी—तुम्हारे समझने से क्या होता है, अभी तो मेरा मालिक जीता है। भगवान् उसे अमर करें, जब तक जीती हूँ इसी तरह रहूँगी, चाहे तुम्हें अच्छा लगे या बुरा। जिसने जवानी मे बाँह पकडी, वह क्या अब छोड देगा! भगवान् को कौन मुँह दिखायेगा?

यह कहती हुई लौंगी घर मे चली गई। मनोरमा चुपचाप सिर झुकाये दोनो की बातें सुन रही थी। उसे लौंगी से सच्चा प्रेम था। मातृस्नेह का जो कुछ सुख उसे मिला था, लौंगी ही से मिला था। उसकी माता तो उसे गोद में छोडकर परलोक सिधारी थी। उस एहसान को वह कभी न भूल सकती थी। अब भी लौंगी उस पर प्राण देती थी। इसलिए गुरुसेवकसिंह की यह निर्दयता उसे बहुत बुरी मालूम होती थी।

लौंगी के जाते ही गुरुसेवकसिह बडे शान्त-भाव से एक कुरसी पर बैठ गये और चक्रधर से बोले— महाशय, आपसे मिलने की इच्छा हो रही थी और इस समय मेरे यहाँ आने का एक कारण यह भी था। आपने आगरे की समस्या जिस बुद्धिमानी से हल की, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

चक्रधर—वह तो मेरा कर्तव्य ही था!

गुरुसेवक—इसीलिए कि आपके कर्तव्य का आदर्श बहुत ऊँचा है। १०० में ९९ आदमी तो ऐसे अवसर पर लड जाना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। मुश्किल से एक आदमी ऐसा निकलता है, जो धैर्य से काम ले। शान्ति के लिए आत्म-समर्पण करनेवाला तो लाख-दो-लाख में एक होता है। आप विलक्षण धैर्य और साहस के मनुष्य हैं। मैंने भी अपने इलाके में कुछ लडको का खेल-सा कर रखा है। वहाँ पठानो के कई बडे-बडे गांव है। उन्ही से मिले हुए ठाकुरों के भी कई गांव है। पहले पठानों और ठाकुरों मे इतना मेल था कि शादी-गमी, तीज-त्योहार में एक दूसरे के साथ शरीक होते थे; लेकिन अब तो यह हाल है कि कोई त्योहार ऐसा नही जाता जिसमे

खून-खच्चर, या कम-से-कम मार-पीट न हो। आप अगर दो-एक दिन के लिए वहाँ चलें, तो आपस मे बहुत कुछ सफाई हो जाय। मुसलमानो ने अपने पत्रो मे आपका जिक्र देखा है और शौक से आपका स्वागत करेंगे। आपके उपदेशो का बहुत कुछ असर पड सकता है।

चक्रधर - बातो मे असर डालना तो ईश्वर की इच्छा के अधीन है। हाँ, मै आपके साथ चलने को तैयार हूँ। मुझसे जो सेवा हो सकेगी, वह उठा न रखूँगा। कब चलने का इरादा है ?

गुरुसेवक—चलता तो इसी गाडी से, लेकिन मैं इस कुलटा को अबकी निकाल बाहर किये बगैर नही जाना चाहता। दादाजी ने रोक-टोक की तो मनोरमा को लेता जाऊँगा और फिर इस घर में कदम न रखूँगा। सोचिये, कितनी बडी बदनामी है।

चक्रधर बडे संकट मे पड गये। विरोध की कटुता को मिटाने के लिए मुस्कराते हुए बोले—मेरे और आपके सामाजिक विचारो मे बडा अन्तर है। मै बिलकुल भ्रष्ट हो गया हूँ।

गुरुसेवक—क्या आप लोगो का यहाँ रहना अनुचित नही समझते ?

चक्रधर—जी नहीं, ख़ानदान की बदनामी अवश्य है, लेकिन मै बदनामी के भय से अन्याय करने की सलाह नहीं दे सकता। क्षमा कीजियेगा, मै बडी निर्भीकता से अपना मत प्रकट कर रहा हूँ।

गुरुसेवक—नही-नही, मै बुरा नही मान रहा हूँ। (मुस्कराकर) इतना उजड्ड नहीं हूँ कि किसी मित्र की सच्ची राय न सुन सकूँ। अगर आप मुझे समझा दें कि उसका यहाँ रहना उचित है, तो मै आपका बहुत अनुगृहीत हूँगा। मै खुद नही चाहता कि मेरे हाथो किसी को अकारण कष्ट पहुँचे।

चक्रधर—जब किसी पुरुष का एक स्त्री के साथ पति-पत्नी का सम्बन्ध हो जाय, तो पुरुष का धर्म है कि जब तक स्त्री की ओर से

कोई विरुद्ध आचरण न देखे, उस सम्बन्ध को निबाहे।

गुरुसेवक—चाहे स्त्री कितनी ही नीच जाति की हो?

चक्रधर—हां, चाहे किसी जाति की हो!

मनोरमा यह जवाब सुनकर गर्व से फूल उठी। वह आवेश में उठ खड़ी हुई और पुलकित होकर खिड़की के बाहर झांकने लगी। गुरुसेवकसिंह वहां न होते, तो वह ज़रूर कह उठती—आप मेरे मुँह से बात ले गये।

एकाएक फिटन की आवाज़ आई और ठाकुर साहब उतरकर अन्दर गये। गुरुसेवकसिंह भी उनके पीछे-पीछे चले। वह डर रहे थे कि लौंगी अवसर पाकर कहीं उनके कान न भर दे।

जब वह चले गये, तो मनोरमा बोली—आपने मेरे मन की बात कही। बहुत-सी बातों में मेरे विचार आपके विचारों से मिलते हैं।

चक्रधर—उन्हें बुरा तो ज़रूर लगा होगा!

मनोरमा—वह फिर आपसे बहस करने आते होंगे। आज मौका न मिलेगा, तो कल करेंगे, अब की वह शास्त्रों के प्रमाण पेश करेंगे, देख लीजियेगा!

चक्रधर—ख़ैर, यह बताओ तुमने इन चार-पांच दिनों में क्या काम किया?

मनोरमा—मैंने तो किताब तक नहीं खोली। बस, समाचार पढ़ती थी और वही बातें सोचती थी। आप नहीं रहते, तो मेरा किसी काम में जी नहीं लगता। आप अब कभी बाहर न जाइयेगा।

चक्रधर ने मनोरमा की ओर देखा, तो उसकी आंखें सजल हो गई थी। सोचने लगे—बालिका का हृदय कितना सरल, कितना उदार, कितना कोमल और कितना भावमय है!

८

जगदीशपुर की रानी देवप्रिया का जीवन केवल दो शब्दो में समाप्त हो जाता था—विनोद और विलास। इस वृद्धावस्था में भी उनकी विलास-वृत्ति अणुमात्र भी कम न हुई थी। हमारी कर्मेन्द्रियां भले ही जर्जर हो जायँ, चेष्टाएँ तो वृद्ध नहीं होतीं ! कहते हैं, बुढ़ापा मरी हुई अभिलाषाओं की समाधि है, या पुराने पापों का पश्चात्ताप , पर रानी देवप्रिया का बुढ़ापा अतृप्त तृष्णा थी और अपूर्ण विलासाराधना। वह दान-पुण्य बहुत करती थीं, साल में दो-चार यज्ञ भी कर लिया करती थीं, साधु-सन्तों पर उनकी असीम श्रद्धा थी ; पर इस धर्मनिष्ठा में उनका ऐहिक स्वार्थ छिपा होता था। परलोक की उन्हें कभी भूलकर भी याद न आती थी। वह भूल गई थीं कि इस जीवन के बाद भी कुछ है। उनके दान और स्नान का मुख्य उद्देश्य था—शारीरिक विकारों से निवृत्ति, विलास में रत रहने की परम योग्यता। यदि वह किसी देवता को प्रसन्न कर सकती तो कदाचित् उससे यही वरदान मांगती कि वह कभी बूढ़ी न हो। इस पूजा-व्रत के सिवा वह इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए भांति-भांति के रसों और पुष्टिकारक औषधियों को सेवन करती रहती थीं। झुर्रियाँ मिटाने और रंग को चमकाने के लिए भी कितने ही प्रकार के पाउडरों, उबटनों और तेलों से काम लिया जाता था। वृद्धावस्था उनके लिए नरक से कम भयङ्कर न थी। चिन्ता को तो वह अपने पास न फटकने देती थीं। रियासत उनके भोग-विलास का साधनमात्र थी, प्रजा को क्या कष्ट होता है, उन पर कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं, सूखे-झूरे की विपत्ति क्योंकर उनका सर्वनाश कर देती है, इन बातों की ओर कभी उनका ध्यान न जाता था। उन्हें जिस समय जितने धन की ज़रूरत हो, उतना तुरन्त देना मैनेजर का काम था। वह ऋण लेकर दे, चोरी करे, या प्रजा का गला काटे, इससे उन्हें कोई प्रयोजन न था।

यों तो रानी साहब को हर एक प्रकार के विनोद से समान प्रेम था। चाहे वह थियेटर हो, या पहलवानों का दङ्गल, या अङ्गरेजी नाच ; पर उनके जीवन की सबसे आनन्दमय घड़ियाँ वे होती थीं, जब वह युवकों और युवतियों के साथ प्रेम-क्रीडा करती थीं। इस मण्डली में बैठकर उन्हें आत्म-प्रवञ्चना का सबसे अच्छा अवसर मिलता था। वह भूल जाती थीं कि मेरा यौवनकाल बीत चुका है। अपने बुझे हुए यौवन-दीपक को युवा की प्रज्ज्वलित स्फूर्ति से जलाना चाहती थीं ; किन्तु इस धुन में वह कितने ही अन्य विलासांध प्राणियों की भाँति नीचों को मुँह न लगाती थीं। काशी आनेवाले राजकुमारों और राज-कुमारियों ही से उनका सहवास रहता था। आनेवालों की कमी न थी। एक-न-एक हमेशा ही आता रहता था। रानी की अतिथि-शाला हमेशा आबाद रहती थी। उन्हें युवकों की आँखों में खुब जाने की सनक-सी थी। वह चाहती थीं कि मेरे सौन्दर्य-दीपक पर युवक पतङ्गों की भाँति आकर गिरें। उनकी रसमयी कल्पना प्रेम के आघात-प्रत्याघात से एक विशेष स्फूर्ति का अनुभव करती थी।

एक दिन ठाकुर हरिसेवक सिंह मनोरमा को रानी साहब के पास ले गये। रानी उसे देखकर मोहित हो गईं। तब से दिन में एक बार उससे ज़रूर मिलती। वह किसी कारण से न आती, तो उसे बुला भेजतीं। उसका मधुर गान सुनकर वह मुग्ध हो जाती थीं। हरिसेवक-सिंह का उद्देश्य कदाचित् यही था कि वहाँ मनोरमा को रईसों और राजकुमारों को आकर्षित करने का मौका मिलेगा।

भादों की अँधेरी रात थी। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। रानी साहब को आज कुछ ज्वर था, चेष्टा गिरी हुई थी, सिर उठाने को जी न चाहता था ; पर पड़े रहने का अवसर न था। हर्षपुर के राजकुमार को आज उन्होंने निमन्त्रित किया था। उनके आदर-सत्कार का सामान करना ज़रूरी था। उनके सहवास के सुख से वह अपने को वञ्चित न कर सकती थीं। उनके आने का समय भी निकट था। रानी ने बड़ी

मुश्किल से उठकर आइने मे अपनी सूरत देखी। उनके हृदय पर आघात-सा हुआ। मुख प्रभात-चन्द्र की भाँति मन्द हो रहा था।

रानी ने सोचा, अभी राजकुमार आते होंगे। क्या मै उनसे इसी दशा मे मिलूँगी? संसार मे क्या कोई ऐसी सञ्जीवनी नहीं है, जो काल के कुटिल चिह्न को मिटा दे? ऐसी वस्तु कही मिल जाती, तो मैं अपना सारा राज्य बेचकर उसे ले लेती। जब भोगने की सामर्थ्य ही न हो, तो राज्य से और सुख ही क्या! हा! निर्दयी काल! तूने मेरा कोई प्रयत्न सफल न होने दिया।

राजकुमार अब आते होंगे, मुझे तैयार हो जाना चाहिये। ज्वर है, कोई परवा नहीं। मालूम नहीं, जीवन में फिर ऐसा अवसर मिले या न मिले।

सामने मेज़ पर एक अलबम रखा था। रानी ने राजकुमार का चित्र निकालकर देखा। कितना सहास मुख था, कितना तेजस्वी स्वरूप, कितनी सुधामयी छवि!

रानी एक आराम-कुरसी पर लेटकर सोचने लगी—यह चित्र न-जाने क्यों मेरे चित्त को इतने ज़ोर से खीच रहा है। मेरा चित्त कभी इतना चञ्चल न हुआ था। इसी अलबम मे और भी कई चित्र हैं, जो इससे कही सुन्दर हैं, लेकिन उन युवकों को मैने कठपुतलियों की तरह नचाकर छोडा। यह एक ऐसा चित्र है, जो मेरे हृदय मे भूली हुई बातों की याद दिला रहा है, जिसके सामने ताकते हुए मुझे लज्जा-सी आती है!

रानी ने घडी की ओर आतुर नेत्रों से देखा। ९ बज रहे थे। अब वह लेटी न रह सकी, सँभलकर उठीं, अलमारी में से एक शीशी निकाली। उसमें से कई बूँदे एक प्याली में डाली और आंखें बन्द करके पी गईं। इसका चामत्कारिक असर हुआ, मानो कोई कुम्हलाया हुआ फूल ताज़ा हो जाय, कोई सूखी पत्ती हरी हो जाय। उनके मुख-मण्डल पर अरुण आभा दौड गई। आंखो मे चञ्चल सजीवता का विकास हो गया, शरीर मे नये रक्त का प्रवाह-सा होने लगा। उन्होने

फिर आईने की ओर देखा और उनके अधरों पर एक मृदुल हास्य की झलक दिखाई दी। उनके उठने की आहट पा लौंडी कमरे मे आकर खडी हो गई। यही उनकी नाइन थी। गुजराती नाम था।

रानी—समय बहुत थोडा है, जल्दी कर।

गुजराती—रानियों को कैसी जल्दी! जिसे मिलना होगा, आयेगा, और बैठा रहेगा!

रानी—नही, आज ऐसा ही अवसर है।

नाइन बडी निपुण थी, तुरन्त शृङ्गारदान खोलकर बैठ गई और रानी का शृङ्गार करने लगी, मानो कोई चित्रकार तस्वीर मे रङ्ग भर रहा हो। आध घण्टा भी न गुजरा था कि उसने रानी के केश गूँथकर नागिन की-सी लटें डाल दी। कपोलो पर एक ऐसा रङ्ग भरा कि झुर्रियाँ गायब हो गईं और मुख पर मनोहर आभा झलकने लगी। ऐसा मालूम होने लगा, मानो कोई सुन्दरी युवती सोकर उठी है। वही अलसाया हुआ अङ्ग था, वही मतवाली आंखे। रानी ने आईने की ओर देखा और प्रसन्न होकर बोली—गुजराती, तेरे हाथ मे कोई जादू है। मै तुझे अपने साथ स्वर्ग में ले चलूँगी। वहाँ तो देवता लोग होगे, तेरी मदद की और ज़रूरत होगी।

गुजराती—आप कभी इनाम तो देती नही। बस, बखान ही करके रह जाती है!

रानी – अच्छा, बता क्या लेगी?

गुजराती—मै लूँगी तो वही लूँगी, जो कई बार मांग चुकी। रुपए-पैसे लेकर मुझे क्या करना है!

रानी—वह वस्तु तेरे लिए नहीं है। तू उसकी आराधना नही कर सकती।

यह एक दीवारगीर पर रखी हुई मदन की छोटी-सी मूर्ति थी। चतुर मूर्तिकार ने इस पर कुछ ऐसी कारीगरी की थी कि दिन के साथ उसका रङ्ग भी बदलता रहता था।

गुजराती—अच्छा तो न दीजिये, लेकिन फिर मुझसे न पूछियेगा कि क्या लेगी ?

रानी—क्या मुझसे नाराज हो गई। (चौंककर) वह रोशनी दिखाई दी ! कुँअर साहब आ गये ! मै झूला-घर में जाती हूँ। इन्हें वही लाना।

यह कहकर रानी ने फिर वही शीशी निकाली और दुगुनी मात्रा मे दवा पीकर झूला-घर की ओर चली। यह एक विशाल भवन था, बहुत ऊँचा और इतना लम्बा-चौडा कि झूले पर बैठकर खूब पेंग ली जा सकती थी। रेशम की डोरियों में पडा हुआ एक पटरा छत से लटक रहा था ; पर चित्रकारों ने ऐसी कारीगरी की थी कि मालूम होता था, किसी वृक्ष की डाल मे पडा हुआ है। पौदों, झाडियों और लताओं ने उसे यमुना तट का कुञ्ज-सा बना दिया था। कई हिरन और मोर इधर-उधर विचरा करते थे। रात को उस भवन में पहुँचकर सहसा यह ज्ञान न होता था कि यह कोई भवन है। पानी का रिमझिम बरसना, ऊपर से हलकी-हलकी फुहारों का पडना, हौज़ मे जल-पक्षियों का क्रीडा करना किसी उपवन की शोभा दरसाता था।

रानी झूले की डोरी पकडकर खडी हो गई और एक हिरन के बच्चे को बुलाकर उसका मुँह सुहलाने लगी। सहसा कदमों की आहट हुई। रानी मेहमान का स्वागत करने के लिए द्वार पर आई, पर यह राजकुमार न थे, मनोरमा थी। रानी को कुछ निराशा तो हुई ; किन्तु मनोरमा भी आज के अभिनय की एक पात्री थी। उन्होंने उसे बुलवा भेजा था।

रानी - बडी देर लगाई। तेरी राह देखते-देखते आंखे थक गई !

मनोरमा—पानी के मारे घर से निकलने की हिम्मत ही न पडती थी।

रानी—राजकुमार ने न-जाने क्यो देर की। आ तब तक कोई गीत सुना।

वहीं हौज के किनारे एक संगमरमर का चबूतरा था। दोनो जाकर उस पर बैठ गई।

रानी—क्या मैं बहुत बुरी लगती हूँ!

मनोरमा—आप! आप तो सौन्दर्य की देवी मालूम होती हैं!

रानी—चल झूठी। मुझसे अपना रूप बदलेगी?

मनोरमा—मैं तो आपकी लौंडी की तरह भी नही हूँ। मुझे आपके साथ बैठते शरम आती है।

रानी—अच्छा, बता संसार में सबसे अमूल्य कौन-सा रत्न है?

मनोरमा—कोहनूर हीरा होगा, और क्या?

रानी—दुत पगली! संसार की सबसे उत्तम, देव-दुर्लभ वस्तु यौवन है। बता तूने किसी से प्रेम किया है?

मनोरमा—जाइये, मैं आपसे नहीं बोलती।

रानी—आह! तूने तीर मार दिया। यही बिगडना तो पुरुषों पर जादू का काम करता है। काश, मेरे मुँह से ऐसी बातें निकलती। सच बता, तूने किसी युवक से प्रेम किया है? अच्छा आ, आज मै सिखा दूँ।

मनोरमा—आप मुझे छेड़ेगी, तो मै चली जाऊँगी।

रानी—ऐ, तो इतना चिढ़ती क्यों है, ऐसी कोई बालिका तो नहीं। देख, सबसे पहली बात है कटाक्ष करने की कला में निपुण होना। जिसे यह कला आती है, वह चाहे चन्द्रमुखी न हो, फिर भी पुरुष का हृदय छीन सकती है। सौन्दर्य स्वयं कुछ नहीं कर सकता, उसी तरह जैसे कोई सिपाही शस्त्रों से कुछ नही कर सकता, जब तक उन्हें चलाना न जानता हो। चतुर खिलाडी एक बाँस की छडी से वह काम कर सकता है, जो दूसरे संगीन और बन्दूक से भी नही कर सकते। मान ले, मै तेरा प्रेमी हूँ, बता मेरी ओर कैसे ताकेगी?

मनोरमा ने लज्जा से सिर झुका लिया। उसे रानी की रसिकता

पर कूतूहल हो रहा था। वह कितनी ही बार यहां आई थी ; पर रानी को कभी इतना मदमत्त न पाया था।

रानी ने उसकी ठुड्ढी पकड़कर मुँह उठा दिया और बोली—पगली, इस भाँति सिर झुकाने से क्या होगा। पुरुष समझेगा यह कुछ जानती ही नही। अच्छा समझ ले, तू पुरुष है, देख मैं तेरी ओर कैसे ताकती हूँ। सिर उठाकर मेरी ओर देख, कहती हूँ सिर उठा, नही मैं चुटकी काट लूँगी। हाँ, इस तरह।

यह कहकर रानी ने मनोरमा को भृकुटी-विलास और लोचन-कटाक्ष का ऐसा कौशल दिखाया कि मनोरमा का अज्ञात मन भी एक क्षण के लिए चञ्चल हो उठा। कटाक्ष मे कितनी उत्तेजक शक्ति है, इसका कुछ अनुमान हो गया।

रानी—तुझे कुछ मालूम हुआ ?

मनोरमा—मुझे तो तीर-सा लगा। आप मोहिनी मन्त्र जानती होंगी।

रानी—तू युवक होती, तो इस समय छाती पर हाथ धरे आहतो की भाँति खड़ी होती ; यह तो कटाक्ष हुआ। आ, अब तुझे बताऊँ कि आँखों से प्रेम की बातें कैसे की जाती है। मेरी ओर देख।

यह कहते-कहते रानी को फिर शिथिलता का अनुभव हुआ। 'सुधा-बिन्दु' का प्रकाश मन्द होने लगा। विकल होकर पूछा—क्यो री, देख तो मेरा मुख कुछ उतरा जाता है।

मनोरमा ने चौंककर कहा - आपको यह क्या हो गया, मुख बिलकुल पीला पड़ गया है। क्या आप बीमार है ?

रानी – हाँ, बेटी बीमार हूँ। राजकुमार अब भी नही आये। तू जाकर गुजराती से 'सुधाबिन्दु' की शीशी और प्याली माँग ला। जल्द आना, नही मैं गिर पड़ूँगी।

मनोरमा दवा लाने गई, तो राजकुमार इन्द्रविक्रमसिंह को मोटर से उतरते देखा। कोई ३० वर्ष की अवस्था थी। मुख से संयम, तेज

और संकल्प झलक रहा था। ऊँचा कद था, गोरा रङ्ग, चौड़ी छाती, ऊँचा मस्तक, आँखों में इतनी चमक और तेजी थी कि हृदय में चुभ जाती थी। वह केवल एक पीले रङ्ग का रेशमी नीचा कुरता पहने हुए थे और गले में एक सफेद चादर डाल दी थी। मनोरमा ने किसी देव-ऋषि का एक चित्र देखा था। मालूम होता था, इन्हीं को देखकर वह चित्र खींचा गया था।

उनके मोटर से उतरते ही चपरासी ने सलाम किया और लाकर दीवानखाने में बैठा दिया। इधर मनोरमा ने गुजराती से शीशी ली और जाकर रानी से यह समाचार कहा। रानी चबूतरे पर लेटी हुई थी। सुनते ही उठ बैठीं और मनोरमा के हाथ से शीशी ले, प्याली में बिना गिने कई बूँदें निकाल, पी गई।

दवा ने जाते-ही जाते अपना असर दिखाया। रानी के मुख-मण्डल पर फिर वही मनोहर छवि, अङ्गों में फिर वही चपलता, वाणी में फिर वही सरसता, आंखों में फिर वही नशा, अधरों पर फिर वही मधुर हास्य, कपोलों पर वही अरुण ज्योति शोभा देने लगी। वह उठकर झूले पर जा बैठी। झूला धीरे-धीरे झूलने लगा। रानी का अञ्चल हवा से उड़ने लगा और केश बिखर गये। यही मोहिनी छवि वह राजकुमार को दिखाना चाहती थीं।

एक क्षण में राजकुमार ने झूले-घर में प्रवेश किया। रानी झूले से उतरना ही चाहती थीं कि वह उनके पास आ गये और बोले—क्या मधुर कल्पना स्वप्न-साम्राज्य में विहार कर रही है?

रानी—जी नहीं, प्रतीक्षा नैराश्य की गोद में विश्राम कर रही है। इतने देर क्यों राह दिखाई?

राजकुमार—मेरा अपराध नहीं। मैं आ ही रहा था कि विश्व-विद्यालय के कई छात्र आ पहुँचे और मुझे एक गम्भीर विषय पर व्याख्यान देने के लिए घसीट ले गये। बहुत हीले-हवाले किये, लेकिन उन सबों ने एक न सुनी।

रानी—तो मैं आपसे शिकायत कब करती हूँ। आप आ गये, यही क्या कम अनुग्रह है। न आते तो मैं क्या कर लेती; लेकिन इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा, याद रखिये। आज रातभर कैद रखूँगी।

राजकुमार—अगर प्रेम के कारावास मे रहना प्रायश्चित्त है, तो मैं उसमे जीवन-पर्यन्त रहने को तैयार हूँ।

रानी—आप बातें बनाने में निपुण मालूम होते हैं। इन निर्दयी केशों को ज़रा सँभाल दीजिये, बार-बार मुख पर आ जाते हैं।

राजकुमार—मेरे कठोर हाथ उन्हें स्पर्श करने योग्य नही हैं।

रानी ने कनखियों से—मर्मभेदी कनखियों से—राजकुमार को देखा। यह असाधारण जवाब था। उन कोमल, सुगन्धित, लहराते हुए केशों को स्पर्श का अवसर पाकर ऐसा कौन था, जो अपना धन्य भाग्य न समझता! रानी दिल में कटकर रह गईं। उन्होंने पुरुष को सदैव विलास की एक वस्तु समझा था। प्रेम से उनका हृदय कभी आन्दोलित न हुआ था। वह लालसा ही को प्रेम समझती थीं। उस प्रेम से, जिसमें त्याग और भक्ति है, वह वञ्चित थीं, लेकिन इस समय उन्हें उसी प्रेम का अनुभव हो रहा था। उन्होंने दिल को बहुत सँभालकर राजकुमार से इतनी बातें की थीं। उनका अन्त.करण उन्हें राजकुमार से यह वासनामय व्यवहार करने पर धिक्कार रहा था। राजकुमार का देव-स्वरूप ही उनकी वासना-वृत्ति को लज्जित करता था। सिर नीचा करके कहा—यदि हाथों की भाँति हृदय भी कठोर है, तो वहाँ प्रेम का प्रवेश कैसे होगा?

राजकुमार—बिना प्रेम के तो कोई उपासक देवी के सम्मुख नही जाता। प्यास के बिना भी आपने किसी को सागर की ओर जाते देखा है?

रानी अब झूले पर न रह सकीं। इन शब्दों मे निर्मल प्रेम झलक रहा था। जीवन मे यह पहला ही अवसर था कि देवप्रिया के कानों मे ऐसे सच्चे अनुराग मे डूबे हुए शब्द पड़े। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा

था कि इनकी आंखें मेरे मर्मस्थल पर चुभी जा रही है। वह उन तीव्र नेत्रों से बचना चाहती थी। झूले से उतरकर रानी ने अपने केश समेट लिये और घूँघट से माथा छिपाती हुई बोली—श्रद्धा देवताओं को भी खींच लाती है। भक्त के पास सागर भी उमड़ता चला आता है।

यह कह वह हौज के किनारे जा बैठीं और फौवारे को घुमाकर खोला, तो राजकुमार पर गुलाब-जल की फुहारें पड़ने लगीं। उन्होंने मुस्कराकर कहा—गुलाब से सिंचा हुआ पौदा लू के झोंके न सह सकेगा। इसका ख़याल रखियेगा।

रानी ने प्रेम-सजल नेत्रों से ताकते हुए कहा—अभी गुलाब से सींचती हूँ, फिर अपने प्राण-जल से सींचूँगी, पर उसका फल खाना मेरे भाग्य में है या नहीं, कौन जाने। उस वस्तु की आशा कैसे करूँ, जिसे मैं जानती हूँ कि मेरे लिए दुर्लभ है।

देवप्रिया ने यह कहते-कहते एक लंबी सांस ली और आकाश की ओर देखने लगी। उनके मन में एक शंका हो उठी, क्या यह दुर्लभ वस्तु मुझे मिल सकती है? मेरा यह मुँह कहाँ?

राजकुमार ने करुण स्वर में कहा—जिस वस्तु को आप दुर्लभ समझ रही हैं, वह आज से बहुत पहले आपकी भेंट हो चुकी है। आप मुझे नहीं जानतीं, पर मैं आपको जानता हूँ—बहुत दिनों से जानता हूँ। अब आपके मुँह से केवल यह सुनना चाहता हूँ कि आपने मेरी भेंट स्वीकार कर ली?

रानी—उस रत्न को ग्रहण करने की मुझे सामर्थ्य नहीं है। मैं आपकी दया के योग्य हूँ, प्रेम के योग्य नहीं।

राजकुमार—कोई ऐसा धब्बा नहीं है, जो प्रेम के जल से छूट न जाय।

रानी—समय के चिह्न को कौन मिटा सकता है? हाय! आपने मेरा असली रूप नहीं देखा। यह मोहिनी छवि जो आप देख रहे हैं, बहुत दिन हुए मेरा साथ छोड़ चुकी। अब मैं अपने यौवनकाल की

चित्र-मात्र हूँ। आप मेरी असली सूरत देखेंगे, तो कदाचित् घृणा से मुँह फेर लेंगे।

यह कहते-कहते रानी को अपनी देह शिथिल होती हुई जान पड़ी। 'सुधाबिंदु' का असर मिटने लगा। उनका चेहरा पीला पड़ गया, झुर्रियाँ दिखाई देने लगीं। उन्होंने लज्जा से मुँह छिपा लिया और यह सोचकर कि शीघ्र ही यह प्रेमाभिनय समाप्त हो जायगा, वह फूट-फूटकर रोने लगीं। राजकुमार ने धीरे से उनका हाथ पकड़ लिया और प्रेम-मधुर स्वर में बोले—प्रिये, मैं तुम्हारे इसी रूप पर मुग्ध हूँ, उस बने हुए रूप पर नहीं। मैं वह वस्तु चाहता हूँ, जो इस परदे के पीछे छिपी हुई है। वह बहुत दिनों से मेरी थी, हाँ इधर कुछ दिनों से उस पर मेरा अधिकार न था। मेरी तरफ ध्यान से देखो, मुझे पहचानती हो? कभी देखा है?

रानी ने हैरत में आकर राजकुमार के मुँह पर नज़र डाली। ऐसा मालूम हुआ, मानो आँखों के सामने से परदा हट गया। याद आया, मैंने इन्हें कहीं देखा है। ज़रूर देखा है। वह सोचने लगी, मैंने इन्हें कहाँ देखा है। याद न आया! बोली—मैंने आपको कहीं पहले देखा है।

राजकुमार—खूब याद है कि आपने मुझे देखा है? भ्रम तो नहीं हो रहा है?

रानी—नहीं, मैंने आपको अवश्य देखा है। सम्भव है, कभी रेलगाड़ी में देखा हो; मगर मुझे ऐसा मालूम होता है कि आप और मैं कभी बहुत दिनों एक ही जगह रहे हैं। मुझे तो याद नहीं आता। आप ही बताइये।

राजकुमार—खूब याद कर लिया?

रानी—(सोचकर) हाँ, कुछ ठीक याद नहीं आता। शायद तब आपकी उम्र कुछ कम थी; मगर थे आप ही।

राजकुमार ने गंभीर भाव से कहा—हाँ प्रिये, मैं ही था। तुमने

मुझे अवश्य देखा है, हम और तुम एक साथ रहे हैं और इसी घर में। यही मेरा घर था। तुम स्त्री थीं, मैं पुरुष था। तुम्हें याद है हम और तुम इसी जगह, इसी हौज़ के किनारे शाम को बैठा करते थे? अब पहचाना?

देवप्रिया की आंखें फिर राजकुमार की ओर उठीं। आईने की गर्द साफ हो गई। बोलीं—प्राणेश! तुम्हीं हो इस रूप में!!

यह कहते-कहते वह मूर्च्छित हो गई।

६

रानी देवप्रिया का सिर राजकुमार के पैरों पर था और आंखों से आँसू बह रहे थे। उसे उनकी ओर ताकते हुए विचित्र भय हो रहा था। उसे कुछ-कुछ संदेह हो रहा था कि मैं सो तो नहीं रही हूँ। कोई मनुष्य माया के दुर्भेद्य अंधकार को चीर सकता है? जीवन और मृत्यु के मध्यवर्ती अपार विस्मृति-सागर को पार कर सकता है? जिसमे यह सामर्थ्य हो वह मनुष्य नहीं, प्रेत-योनि का कोई जीव है। यह विचार आते ही रानी का सारा शरीर कांप उठा, पर इस भय के साथ ही उसके मन में उत्कंठा हो रही थी कि उन्हीं चरणों से लिपटी हुई इसी क्षण प्राण त्याग दूँ। राजकुमार उसके पति हैं, इसमे तो उसे संदेह न था, संदेह केवल यह था कि मेरे साथ यह कोई प्रेत-लीला तो नहीं कर रहे हैं। वह रह-रहकर छिपी हुई निगाहों से उनके मुख की ओर ताकती थी, मानो निश्चय कर रही हो कि यह मेरे पति ही हैं, या मुझे भ्रम हो रहा है।

सहसा राजकुमार ने उसे उठाकर बैठा दिया और उसके मनोभावों

को शान्त करते हुए बोले—हाँ प्रिये, मै तुम्हारा वही चिरसंगी हूँ, जो अपनी प्रेमाभिलाषाओ को लिये हुए कुछ दिनो को तुम से जुदा हो गया था। मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि कोई यात्रा करके लौटा आ रहा हूँ। जिसे हम मृत्यु कहते हैं, और जिसके भय से संसार काँपता है, वह केवल एक यात्रा है। उस यात्रा मे भी मुझे तुम्हारी याद आती रहती थी। विकल होकर आकाश मे इधर-उधर दौडा करता था। प्रायः सभी प्राणियो की यही दशा थी। कोई अपने संचित धन का अपव्यय देख-देखकर कुढता था, कोई अपने बाल-बच्चों को ठोकरे खाते देखकर रोता था। वे दृश्य इस मर्त्यलोक के दृश्यो से कही करुणाजनक, कही दु खमय थे। कितने ही ऐसे जीव दिखाई दिये, जिनके सामने यहाँ सम्मान से मस्तक झुकता था। वहाँ उनका नग्न स्वरूप देखकर उनसे घृणा होती थी। यह कर्म-लोक है, वहाँ भोग-लोक ; और कर्म का दंड कर्म से कही भयंकर होता है। मै भी उन्हीं अभागो मे था। देखता था कि मेरे प्रेम-सिंचित उद्यान को भाँति-भाँति के पशु कुचल रहे हैं, मेरे प्रणय के पवित्र सागर मे हिंसक जल-जंतु दौड रहे है और देख-देखकर क्रोध से विह्वल हो जाता था। अगर मुझमे वज्र गिराने की सामर्थ्य होती, तो गिराकर उन पशुओ का अन्त कर देता। मुझे यही ताप, यही जलन थी। कितने दिनों मेरी यह अवस्था रही, इयका कुछ निश्चय नहीं कर सकता, क्योंकि वहाँ समय का बोध करानेवाली मात्राएँ न थीं, पर, मुझे तो ऐसा जान पडता था कि उस दशा मे पडे हुए मुझे कई युग बीत गये। रोज़ नई-नई सूरतें आतीं और पुरानी सूरते लुप्त होती रहती थी। सहसा एक दिन मै भी लुप्त हो गया। कैसे लुप्त हुआ, यह याद नहीं ; पर होश आया तो मैने अपने को बालक के रूप मे पाया। मैने राजा हर्षपुर के घर में जन्म लिया था।

इस नये घर मे मेरा लालन-पालन होने लगा। ज्यों-ज्यों बढता था, स्मृति पर परदा-सा पडता जाता था, पिछली बातें भूलता जाता था।

यहाँ तक कि जब बोलने की सामर्थ्य हुई तो माया अपना काम पूरा कर चुकी थी। बहुत दिनों तक अध्यापकों से पढ़ता रहा। मुझे विज्ञान मे विशेष रुचि थी। भारतवर्ष में विज्ञान की कोई अच्छी प्रयोगशाला न होने के कारण मुझे यूरप जाना पड़ा। वहाँ मै कई वर्ष वैज्ञानिक परीक्षाएँ करता रहा। जितना ही रहस्यों का ज्ञान बढ़ता था, उतना ही ज्ञान-पिपासा भी बढ़ती थी, किन्तु इन परीक्षाओं का फल मुझे लक्ष्य से दूर लिए जाता था। मैंने सोचा था, विज्ञान-द्वारा जीव का तत्व निकाल लूँगा; पर सात वर्षों तक अनवरत परिश्रम करने पर भी मनोरथ न पूरा हुआ।

एक दिन मै बर्लिन की प्रधान प्रयोगशाला में बैठा हुआ यही सोच रहा था कि एक तिब्बती भिक्षु आ निकला। मुझे चिन्तित देखकर वह एक क्षण ,मेरी ओर ताकता रहा, फिर बोला—बालू से मोती नहीं निकलते, भौतिक ज्ञान से आत्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त होता।

मैने चकित होकर पूछा—आपको मेरे मन की बात कैसे मालूम हुई?

भिक्षु ने हँसकर कहा—आपके मन की इच्छा तो आपके मुख पर लिखी हुई है। जड से चेतन का ज्ञान नहीं होता। यह क्रिया ही उलटी है। उन महात्माओं के पास जाओ, जिन्होंने, आत्मज्ञान प्राप्त किया है। वही तुम्हें वह मार्ग दिखायेंगे।

मैने पूछा ऐसे महात्माओं के दर्शन कहाँ होंगे? मेरा तो अनुमान है कि वह विद्या ही लोप हो गई और जो उसके जानने का दावा करते हैं वे बने हुए महात्मा हैं!

भिक्षु—यथार्थ कहते हो, लेकिन अब भी खोजने से ऐसे महात्मा मिल जायँगे। तिब्बत की तपोभूमि मे आज भी ऐसी महान् आत्माएँ हैं, जो माया का रहस्य खोल सकती है। हाँ, जिज्ञासा की सच्ची लगन चाहिये।

मेरे मन में बात बैठ गई। तिब्बत की चरचा बहुत दिनो से सुनता

आता था। भिक्षु से वहाँ की कितनी ही बातें पूछता रहा। अन्त मे उसी के साथ तिब्बत चलने की ठहरी। मेरे मित्रों को यह बात मालूम हुई, तो वे भी मेरे साथ चलने पर तैयार हो गये। हमारी एक समिति बनाई गई, जिसमे २ अँगरेज़, २ फ्रेंच और ३ जर्मन थे। अपने साथ नाना प्रकार के यंत्र लेकर हम लोग अपने मिशन पर चले। मार्ग में किन-किन कठिनाइयो का सामना करना पडा, वहाँ कैसे पहुँचे, विहारों मे क्या-क्या दृश्य देखे, इसकी चरचा करने लगूँ तो कई दिन लग जायँगे। कई बार तो हम लोग मरते-मरते बचे; लेकिन वहाँ चित्त को जो शांति मिली, उसके लिए हम मर भी जाते तो दुःख न होता। अँगरेज़ो को तो सफलता न हुई, क्योंकि वे तिब्बत की सैनिक स्थिति का निरीक्षण करने आये थे और भिक्षुओ ने उनकी नीयत भाँप ली; लेकिन शेष पाचो मित्रो ने तो पाली और संस्कृत के ऐसे-ऐसे ग्रन्थ-रत्न खोज निकाले कि उन्हें वहा से ले जाना कठिन हो गया। जर्मन तो ऐसे प्रसन्न थे, मानो उन्हें कोई प्रदेश हाथ आ गया हो।

शरद्‌ऋतु थी, जलाशय हिम से ढक गये थे। चारो ओर बर्फ़-ही-बर्फ़ दिखाई देती थी। मेरे मित्र लोग तो पहले ही चले गये थे। अकेला मैं ही रह गया था। एक दिन संध्या-समय मै इधर-उधर विचरता हुआ एक शिला पर जाकर खडा हो गया। सामने का दृश्य अत्यन्त मनोरम था, मानो स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। उसका बखान करना उसका अपमान करना है। मनुष्य की वाणी मे न इतनी शक्ति है, न शब्दो में इतना वैचित्र्य! इतना ही कह देना काफ़ी है कि वह दृश्य अलौकिक था, स्वर्गोपम था। विशाल दृश्यो के सामने हम मन्त्र-मुग्ध से हो जाते है, अवाक् होकर ताकते हैं, कुछ कह नहीं सकते। मौन आश्चर्य की दशा मे खडा ताक ही रहा था कि सहसा मैने एक वृद्ध पुरुष को सामने की एक गुफा से निकलकर पर्वत-शिखर की ओर जाते देखा। जिन शिलाओं पर कल्पना के भी पाँव डगमगा जायँ, उन पर वह इतनी सुगमता से चले जाते थे कि विस्मय होता था। बडे-बडे दर्रों को

इस भाँति फांद जाते थे, मानो छोटी-छोटी नालियाँ हैं। मनुष्य की यह शक्ति कि वह उस हिम से ढके हुए, दुर्गम शृङ्ग पर इतनी चपलता से उचकता चला जाय और मनुष्य भी वह जिसके सिर के बाल सन की भांति सफेद हो गये थे! मुझे ख़याल आया कि इतना पुरुषार्थ प्राप्त करना किसी सिद्ध ही का काम है। मेरे मन मे उनके दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा हुई; पर मेरे लिए ऊपर चढना असाध्य था। वह न-जाने फिर कब तक उतरें, कब तक वहाँ खडा रहना पडे! उधर अँधेरा बढता जाता था। आख़िर मैंने निश्चय किया कि आज लौट चलूँ, कल से रोज दिन-भर यहीं बैठा रहूँगा, कभी-न-कभी तो वह उतरेंगे ही, कभी-न-कभी तो दर्शन होंगे ही। मेरा मन कह रहा था कि इन्हीं से तुझे आत्म-ज्ञान प्राप्त होगा। दूसरे दिन मै प्रातःकाल वहाँ आकर बैठ गया और सारे दिन शिखर की ओर टकटकी लगाये देखता रहा; पर चिडिया का पूत भी न दिखाई दिया। एक महीने तक यही मेरा नित्य का नियम रहा। रात-भर विहार में पडा रहता, दिन-भर शिला पर बैठा रहता; पर महात्माजी न-जाने कहाँ गायब हो गये थे, उनकी झलक तक न दिखाई देती थी। मैने कई बार ऊपर चढने का प्रयत्न किया; पर सौ गज से आगे न जा सका। कील-कांटे ठोकते, शिलाओ पर रास्ता बनाते कई महीनों में शिखर पर पहुँचना सम्भव था; पर यह अकेले आदमी का काम न था, अन्य भिक्षुओ से पूछता तो वे हँसकर कहते—उनके दर्शन हमें दुर्लभ हैं, तुम्हें क्या होंगे। बरसों में कभी एक बार दिखाई दे जाते हैं। कहां रहते हैं, कोई नहीं जानता; किन्तु अधीर न होना। वह यदि तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हो गये, तो तुम्हारी मन.कामना पूरी हो जायगी। यह भी सुनने मे आया कि कई भिक्षु उनके दर्शनों की चेष्टा में प्राणो से हाथ धो बैठे हैं। उनमें इतना विद्युत्तेज है कि साधारण मनुष्य उनके सम्मुख खडा ही नहीं हो सकता उनकी नेत्र-ज्योति बिजली की तरह हृत्स्थल मे लगती है। जिसने वह आघात सह लिया, उसकी तो कुशल है; जो न सह सका वहीं

खड़ा-खड़ा भस्म हो जाता है। कोई योगी ही उनसे साक्षात् कर सकता है।

यह बाते सुन-सुनकर मेरी भक्ति और भी दृढ़ होती जाती थी। मरूँ या जिऊँ; पर उनके दर्शन अवश्य करूँगा, यह धारणा मन मे जम गई। योग की क्रियाएँ तो पहले ही से करने लगा था, इसलिए मुझे विश्वास था कि मै उनके तेज का सामना कर सकता हूँ। दिव्य ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न मे मर जाना भी श्रेय की बात होगी। क्या था, क्या हूँगा? कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा? इन प्रश्नो का उत्तर किसी ने आज तक न दिया और न दे सकता है। वह तो अपने अनुभव की बात है। हम उसका अनुभव ही कर सकते है, किसी को बता नहीं सकते। इस महान् उद्योग मे मर जाना भी मनुष्य के लिए गौरव की बात है।

एक वर्ष गुज़र गया और महात्माजी के दर्शन न हुए। न-जाने कहाँ जाकर अन्तर्द्धान हो गये। वहां से न किसी को पत्र लिख सकता था, न संसार की कुछ खबर मिलती थी। कभी-कभी जी ऐसा घबराता कि चलकर अन्य सांसारिक प्राणियो की भांति जीवन का सुख भोगूँ। इसमें रखा ही क्या है कि मै क्या था और क्या हूँगा। पहले तो यही निश्चित नहीं कि मुझे यह ज्ञान प्राप्त भी होगा और हो भी गया, तो उससे मेरा या संसार का क्या उपकार होगा। विना इन रहस्यो के जाने, जीवन को उच्च और पवित्र बनाया जा सकता है। वहाँ की सुरम्यता अजीर्ण हो गई, वह कमनीय प्राकृतिक छटा आंखो मे खटकने लगी। विवश होकर स्वर्ग मे भी रहना पड़े, तो वह नरक तुल्य हो जाय।

अंत मे एक दिन मैने निश्चय किया कि अब जो होना हो सो हो, इस पर्वत-शृङ्ग पर अवश्य चढ़ूँगा। यह निश्चय करके मैने चढ़ना शुरू किया, लेकिन दिन गुजर गया और मै सौ गज से आगे न जा सका। मेरी चढ़ाई उन विज्ञान के खोजियो की-सी न थी, जो सभी साधनो

से लैस होते है। मैं अकेला था, न कोई यंत्र न मंत्र, न कोई रक्षक, न प्रदर्शक, भोजन का भी ठिकाना नहीं, प्राणो पर खेलना था। पर करता क्या। ज्ञान के मार्ग मे यंत्रों का जिक्र ही क्या। आत्म-समर्पण तो उसकी पहली क्रिया है। जानता था कि मर जाऊँगा; किन्तु पडे-पडे मरने से उद्योग करते हुए मरना अच्छा था।

पहली रात मैंने एक चट्टान पर बैठकर काटी। बार-बार झपकियाँ आती थी; पर चौक-चौक पडता था। ज़रा चूका और रसातल पहुँचा इतनी कुशल थी कि गरमी के दिन आ गये थे। हिम का गिरना बंद था, पर जहाँ इतना आराम था, वहाँ पिघली हुई हिम-शिलाओं के गिरने से क्षणमात्र में जीवन से हाथ धोने की शंका भी थी। वह भयंकर निशा, वह भयंकर जंतुओं की गरज और तडप, याद करता हूँ तो आज भी रोमांच हो जाता है। बार-बार पूर्व दिशा की ओर ताकता था, पर निर्दयी सूर्य उदय होने का नाम न लेता था। खैर, किसी तरह रात कटी, सवेरे फिर चला। आज की चढाई इतनी सीधी न थी फिर भी ५० गज़ से आगे न जा सका। रास्ते मे एक दर्रा पड गया जिसे पार करना असम्भव था। इधर-उधर बहुत निगाह दौडाई, पर ऐसा कोई उतार न दिखाई दिया जहां से उतरकर दर्रे को पार कर सकता। इधर भी सीधी दीवार थी, उधर भी। संयोग से एक जगह दोनो ओर दो छोटे-छोटे वृक्ष दिखाई दिये। मेरी जेब में पतली रस्सी का एक टुकडा पडा हुआ था। अगर किसी तरह इस रस्सी को दोनो वृक्षों में बांध सकूँ, तो समस्या हल हो जाय; लेकिन उस पार रस्सी को पेड मे कौन बांधे? आखिर मैंने रस्सी के एक सिरे में पत्थर का एक भारी टुकडा खूब कसकर बांधा और उसको लंगर की भांति उस पारवाले वृक्ष पर फेकने लगा कि किसी डाल मे फँस जाय तो पार हो जाऊँ। बार-बार पूरा ज़ोर लगाकर लगर फेकता था; पर लंगर वहाँ तक न पहुँचता था। सारा दिन इसी लंगरबाजी में कट गया, रात आ गई। शिलाओं पर सोना जान-जोखिम था। इसलिए वह रात मैंने

वृक्ष ही पर काटने की ठानी। मै उस पर चढ गया और दो डालो मे रस्सी फॅसा-फॅसाकर एक छोटी-सी खाट बना ली। आधी रात गुजरी थी कि बडे ज़ोर का धमाका हुआ। उस अथाह खोह मे कई मिनट तक उसकी आवाज गूँजती रही। सवेरे देखा तो बर्फ की एक बडी शिला ऊपर से पिघलकर गिर पडी थी और उस दर्रे पर उसका एक पुल-सा बन गया था। मै खुशी के मारे फूला न समाया। जो मेरे लिए कभी न हो सकता, वह प्रकृति ने आप-ही-आप कर दिया। यद्यपि उस पुल पर से दर्रे को पार करना प्राणो से खेलना था—मृत्यु के मुख मे पाव रखना था ; पर दूसरा कोई उपाय न था। मैने ईश्वर को स्मरण किया और सॅभल-सॅभलकर उस हिम-राशि पर पाँव रखता हुआ खाई को पार कर गया। इस असाध्य साधना मे सफल होने से मेरे मन मे यह धारणा होने लगी कि मै मर नही सकता। कोई अज्ञात शक्ति मेरी रक्षा कर रही है। किसी कठिन कार्य मे सफल हो जाना आत्मविश्वास के लिए सञ्जीवनी के समान है। मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मेरा मनोरथ अवश्य पूरा होगा।

उस पार पहुँचते ही सीधी चट्टान मिली। दर्रे के किनारे और चट्टान मे केवल एक वालिश्त, और कहीं-कही एक हाथ का अन्तर था। उस पतले रास्ते पर चला तलवार की बाढ पर पैर रखना था। चट्टान से चिमट-चिमटकर चलता हुआ, दो-तीन घण्टो के बाद मै एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ चट्टान की तेज़ी बहुत कम हो गई थी। मै लेटकर ऊपर को रेगने लगा। सम्भव था, मै संध्या तक इसी तरह रेगता रहता, पर संयोग से एक समथल शिला मिल गई और उसे देखते ही मुझे जोर की थकन मालूम होने लगी। जानता था कि यहाँ सोकर फिर उठने की नौबत न आयेगी, पर ज़रा-से लेट जाने के लोभ को मै किसी तरह संवरण न कर सका। नींद को दूर रखने के लिए एक गीत गाने लगा। लेकिन न-जाने कब आंखें झपक गई। कह नही सकता कितनी देर तक सोया, जब नींद खुली और चाहा कि उठूँ तो

ऐसा मालूम हुआ कि ऊपर मनो बोझ रखा हुआ है। सब अङ्ग जकड़े हुए थे। कितना ही ज़ोर मारता था, पर अपनी जगह से हिल न सकता था, चेतना किसी डूबते हुए नक्षत्र की भाँति डूबती जाती थी। समझ गया कि जीवन से इतने ही दिनों तक का साथ था। पूर्व स्मृतियाँ चेतना की अन्तिम जागृति की भाँति जाग्रत हो गई। अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। व्यर्थ प्राण खोये। इतना जानने ही से तो उद्धार न होगा कि मैं पूर्व-जन्म मे क्या था। यह ज्ञान न रखते हुए भी संसार में एक-से-एक ज्ञानी, एक-से-एक प्रण-वीर, एक-से-एक धर्मात्मा हो गये, क्या उनका जीवन सार्थक न हुआ? यही सोचते-सोचते न-जाने कब मेरी चेतना का अपहरण हो गया। जब आँख खुली तो देखा कि एक छोटी-सी कुटी में मृग-चर्म पर कम्बल ओढ़े पड़ा हुआ हूँ। और एक पुरुष बैठा हुआ मेरे मुख की ओर वात्सल्य-दृष्टि से देख रहा है। मैंने इन्हें पहचान लिया। यह वही महात्मा थे, जिनके दर्शनो के लिए मैं लालायित हो रहा था। मुझे आँखे खोलते देखकर वह सदय भाव से मुस्कराये और बोले—हिम-शय्या कितनी प्रिय वस्तु है! पुष्प-शय्या पर तुम्हें कभी इतना सुख मिला था?

मैं उठ बैठा और महात्मा के चरणों पर सिर रखकर बोला—आपके दर्शनो से जीवन सफल हो गया। आपकी दया न होती तो शायद वही मेरा अन्त हो जाता।

महात्मा—अन्त कभी किसी का नहीं होता। जीव अनन्त है। हाँ, अज्ञानवश हम ऐसा समझ लेते हैं।

मैं—मुझे आपके दर्शनो की बड़ी इच्छा थी। आप मे अमानुषीय शक्ति है।

महात्मा—इसीलिए ऐसा समझते हो कि तुमने मुझे शिलाओं पर चढ़ते देखा है? यह तो अमानुषीय शक्ति नही है। यह तो साधारण मनुष्य भी अभ्यास से कर सकता है।

मैं—आपने योग द्वारा ही यह बल प्राप्त किया होगा?

महात्मा—नहीं, मै योगी नहीं, प्रयोगी हूँ। आपने डारविन का नाम सुना होगा ? पूर्व-जन्म मे मेरा ही नाम डारविन था ?

मैने विस्मित होकर कहा—आप ही डारविन थे ?

महात्मा—हाँ, उन दिनो मै प्राणि-शास्त्र का प्रेमी था। अब प्राण-शास्त्री का खोजी हूँ।

सहसा मुझे अपनी देह मे एक अद्भुत् शक्ति का संचालन होता हुआ मालूम हुआ। नाडी की गति तीव्र हो गई, आंखों से ज्योति की रेखाएँ-सी निकलने लगी। वाणी में ऐसा विकास हुआ, मानो कोई कली खिल गई हो। मै फुर्ती से उठ बैठा और महात्माजी के चरणो पर झुकने लगा, किन्तु उन्होने मुझे रोककर कहा—तुम मुझे शिलाओं पर चलते देखकर विस्मित हो गये, पर वह समय आ रहा है, जब आनेवाली जाति जल, स्थल और आकाश मे समान रीति से चल सकेगी। यह मेरा विश्वास है। पृथ्वी का क्षेत्र उन्हें छोटा मालूम होगा। वह पृथ्वी से अन्य पिंडो मे उतनी ही सुगमता से आ-जा सकेगे जैसे एक देश से दूसरे देश मे।

मै—आपको अपने पूर्व-जन्म का ज्ञान योग द्वारा ही हुआ होगा ?

महात्मा – नहीं, मै पहले ही कह चुका कि मै योगी नहीं, प्रयोगी हूँ। तुमने तो विज्ञान पढा है, क्या तुम्हें मालूम नहीं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विद्युत् का अपार सागर है। जब हम विज्ञान द्वारा मन के गुप्त रहस्य जान सकते है, तो क्या अपने पूर्व-संस्कार न जान सकेगे। केवल स्मृति को जगा देने ही से पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है।

मै—मुझे भी वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है ?

महात्मा—मुझे हो सकता है, तो आपको क्यो न हो सकेगा। अभी तो आप थके हुए है। कुछ भोजन करके स्वस्थ हो जाइये, तो मै आपको अपनी प्रयोगशाला की सैर कराऊँ।

मै—क्या आपकी प्रयोगशाला भी यही है ?

महात्मा—हाँ, इसी कमरे से मिली हुई है। आप क्या भोजन करना चाहते हैं?

मैं—उसके लिए आप कोई चिंता न करें। आपका जूठन मैं भी खा लूँगा।

महात्मा—(हँसकर) अभी नहीं खा सकते। अभी तुम्हारी पाचन-शक्ति इतनी बलवान नहीं है। तुम जिन पदार्थों को खाद्य समझते हो, उन्हें मैंने बरसों से नहीं खाया। मेरे लिए उदर को स्थूल वस्तुओं से भरना वैसा ही अवैज्ञानिक है, जैसे इस वायुयान के दिनों में बैल-गाड़ी पर चलना। भोजन का उद्देश्य केवल संचालन-शक्ति का उत्पन्न करना है। जब वह शक्ति हमें भोजन करने की अपेक्षा कहीं आसानी से मिल सकती है तो उदर को क्यों अनावश्यक वस्तुओं से भरें। वास्तव में आनेवाली जाति उदरविहीन होगी।

यह कहकर उन्होंने मुझे थोड़े-से फल खिलाये, जिनका स्वाद आज तक याद करता हूँ। भोजन करते ही मेरी आँखें-सी खुल गईं। ऐसे फल न-जाने किस बाग में पैदा होते होंगे। यहाँ की विद्युन्मय वायु ने पहले ही आश्चर्यजनक स्फूर्ति उत्पन्न कर दी थी। यह भोजन करके तो मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि मैं आकाश में उड़ सकता हूँ। वह चढ़ाई, मैं असाध्य समझ रहा था, अब तुच्छ मालूम होती थी।

अब महात्माजी मुझे अपनी प्रयोगशाला की सैर कराने चले। यह एक विशाल गुफा थी, जिसके विस्तार का अनुमान करना कठिन था, उसकी चौड़ाई ४०० हाथ से कम न रही होगी। लम्बाई उसकी चौगुनी थी। ऊँची इतनी कि हमारे ऊँचे से ऊँचे मीनार भी उसके पेट में समा सकते थे। बौद्ध मूर्तिकारों की अद्भुत चित्रकला यहाँ भी विद्यमान थी। यह पुराने समय का कोई विहार था। महात्माजी ने उसे प्रयोग-शाला बना लिया था।

प्रयोगशाला में कदम रखते ही मैं एक दूसरी ही दुनिया में पहुँच गया। जेनेवा नगर आँखों के सामने था और एक भवन में राष्ट्रों के

मंत्री बैठे हुए किसी राजनीतिक विषय पर बहस कर रहे थे। उनकी आँखो के इशारे, ओठो का हिलाना और हाथो का उठना साफ़ दिखाई देता था। उनके मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द साफ़-साफ़ कानो मे आता था। एक क्षण के लिए मै धोखे मे आ गया कि जेनेवा ही मे बैठा हूँ। ज़रा और आगे बढा तो मधुर सगीत की ध्वनि कानो में आई। मैने यूरप मे यह आवाज़ सुनी थी। पहचान गया, पैड्रोस्की की आवाज़ थी। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। जिन आविष्कारो का बडे-बडे विद्वानो को अभी आभास-मात्र था, वे सब यहाँ अपने समुन्नत, पूर्ण रूप मे दिखाई दे रहे थे। इस निर्जन स्थान में, आबादी से कोसों दूर, इतनी ऊँचाई पर कैसे उन प्रयोगो मे सफलता हुई, ईश्वर ही जान सकते हैं। महात्मा लोग तो योग की क्रियाओ ही में कुशल होते है। अध्यात्म उनका क्षेत्र है। विज्ञान पर उन्होंने कैसे आधिपत्य जमाया। महात्माजी मेरी ओर देखकर मुस्कराये और बोले—विज्ञान अन्त करण को भी गुप्त नही छोडता। तुम्हें इन बातों से आश्चर्य हो रहा है, पर यथार्थ यह है कि विज्ञान ने योग को बहुत सरल कर दिया है। वह बहिर्जगत् से अब धीरे-धीरे अन्तर्जगत् मे प्रवेश कर रहा है। मनोयोग की जटिल क्रियाओं द्वारा जो सिद्धि बरसो मे प्राप्त होती थी, वह अब क्षणो मे हो जाती है। कदाचित् वह समय दूर नही है कि हम विज्ञान द्वारा मोक्ष भी प्राप्त कर सकेंगे।

मैने पूछा—क्या पूर्व समय का ज्ञान भी किसी प्रयोग द्वारा हो सकता है?

महात्मा—हो सकता है, लेकिन उससे किसी उपकार की आशा नही। विज्ञान अगर प्राणियो का उपकार न करे तो उसका मिट जाना ही अच्छा। केवल जिज्ञासा को शान्त करने, विलास मे योग देने, या स्वार्थ की सहायता करने के लिए योग करना उसका दुरुपयोग करना है। मै चाहूँ तो अभी एक क्षण मे यूरप के बडे-से-बडे नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दूँ, लेकिन विज्ञान प्राण-रक्षा के लिए है, वध करने के लिए नही।

मुझे निराशा तो हुई पर आग्रह न कर सका। शाम तक प्रयोग-शाला के यन्त्रों को देखता रहा। किन्तु उनमे अब मन न लगता था। यही धुन सवार थी कि क्योंकर यह दुस्तर कार्य सिद्ध करूँ। आख़िर, उन्हें किसी तरह पसीजते न देखकर मैंने उसी हिकमत से काम लिया जो निरुपायों का आधार है। बोला—भगवन्, आपने वह सब कर दिखाया जिसका संसार के विज्ञानवेत्ता अभी केवल स्वप्न देख रहे हैं।

महात्माजी पर इन शब्दों का वही असर पड़ा जो मैं चाहता था। यद्यपि मैंने यथार्थ ही कहा था, लेकिन कभी-कभी यथार्थ भी खुशामद का काम कर जाता है। प्रसन्न होकर बोले—मैं गर्व तो नहीं करता; पर ऐसी प्रयोगशाला संसार में दूसरी नहीं है।

मैं—यूरपवालों को ख़बर मिल जाय तो आपको आराम से बैठना मुश्किल हो जाय।

महात्मा—मैंने कितनी ही नई-नई बातें खोज निकाली पर उनका गौरव आज दूसरों को प्राप्त है। लेकिन इसकी क्या चिन्ता। मैं विज्ञान का उपासक हूँ, अपनी ख्याति और गौरव का नहीं।

मैं—आपने इस देश का मुख उज्ज्वल कर दिया।

महात्मा—मेरा यान आकाश में जितनी ऊँचाई तक पहुँच सकता है, उसकी यूरपवाले कल्पना भी नहीं कर सकते। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही मेरी चन्द्रलोक की यात्रा सफल होगी। यूरप के वैज्ञानिकों की तैयारियाँ देख-देखकर मुझे हँसी आती है। जब तक हमको वहाँ की प्राकृतिक स्थिति का ज्ञान न हो, हमारी यात्रा सफल नहीं हो सकती। सबसे पहले विचार-धाराओं को वहाँ ले जाना होगा। विद्वान लोग भी कभी-कभी बालकों की-सी कल्पनाएँ करने लगते हैं।

मैं—वह दिन हमारे लिए सौभाग्य और गर्व का होगा।

महात्मा—प्राचीन काल में ऋषिगण योग-बल से त्रिकालदृष्टि प्राप्त किया करते थे। पर उसमें बहुधा भ्रम हो जाता था। उसकी सत्यता का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न होता था। मैंने वैज्ञानिक परीक्षाओं से उस

कार्य को सिद्ध किया है। प्रण तो मैंने यही किया था कि किसी को यह रहस्य न बताऊँगा, लेकिन तुम्हारी तपस्या देखकर दया आ रही है। मेरे साथ आओ।

मैं महात्माजी के पीछे-पीछे एक ऐसी गुफा मे पहुँचा जहाँ केवल एक छोटी-सी चौकी रखी हुई थी। महात्माजी ने गम्भीर मुख से कहा—तुम्हें यह बात गुप्त रखनी होगी। मैंने कहा—जैसी आज्ञा।

महात्मा—तुम इसका वचन देते हो।

मैं—आप इसकी किंचित्मात्र भी चिन्ता न करें।

महात्मा—अगर किसी यश और धन के इच्छुक को यह खबर मिल गई तो वह संसार में एक महान् क्रान्ति उपस्थित कर देगा और कदाचित् मुझे प्राणों से हाथ धोना पडे। मै मर जाऊँगा, किन्तु इस गुप्त ज्ञान का प्रचार न करूँगा। तुम इस चौकी पर लेट जाओ और आँखे बन्द कर लो।

चौकी पर लेटते ही मेरी आँखें झपक गई और पूर्व-जन्म के दृश्य आँखों के सामने आ गये। हाँ प्रिये, मेरा अतीत जीवित हो गया। यही भवन था, यही माता-पिता थे, जिनकी तसवीरे दीवानखाने मे लगी हुई है। मै लडको के साथ बाग मे गेंद खेल रहा था। फिर दूसरा दृश्य सामने आया। मै गुरु की सेवा मे बैठा हुआ पढ रहा था। यह वही गुरुजी थे जिनकी तसवीर तुम्हारे कमरे मे है। एक तिल का भी अन्तर नही है। इसके बाद युवावस्था का दृश्य आया। मै तुम्हारे साथ एक नौका पर बैठा हुआ नदी मे जल-क्रीडा कर रहा था। याद है वह दृश्य जब हवा वेग से चलने लगी थी और तुम डरकर मेरे हृदय से चिमट गई थी?

देवप्रिया—खूब याद है, प्राणेश! खूब याद है।

राजकुमार—वह दृश्य याद है, जब मै लताकुंज मे घास पर बैठा हुआ तुम्हे पुष्पाभूषणों से अलंकृत कर रहा था।

देवप्रिया—हाँ प्राणनाथ, खूब याद है। यही तो वह स्थान है!

राजकुमार—पाँचवाँ दृश्य वह था जब मैं मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ था। माता-पिता सिरहाने खड़े थे और तुम मेरे पैरों पर सिर रखे रो रही थी! याद है?

देवप्रिया—हाय प्राणनाथ! वह दिन भी भूल सकती हूँ?

राजकुमार—एक क्षण में मेरी आँखें खुल गईं। पर जो कुछ न देखा था, वह सब आँखों में फिर रहा था, मानो बचपन की बातें हों। मैंने महात्मा से पूछा—मेरे माता-पिता जीवित हैं? उन्होंने एक क्षण आँखें बन्द करके सोचने के बाद कहा—उनका देहावसान हो गया है। तुम्हारे शोक में दोनों घुल-घुलकर मर गये।

मैं—और मेरी स्त्री?

महात्मा—वह अभी जीवित है।

मैं—किस नगर में है?

महात्मा—काशी के समीप जगदीशपुर में। किन्तु तुम्हारा वहाँ जाना उचित नहीं, यह ईश्वरी इच्छा के विरुद्ध होगा और संस्कारों के क्रम को पलटना अनिष्ट का मूल है।

मैंने उस समय तो कुछ न कहा, पर उसी क्षण मैंने तुमसे मिलने का दृढ़ संकल्प कर लिया। मुझे अब वहाँ एक-एक क्षण एक-एक युग हो गया। दो दिन तो मैं किसी तरह रहा, तीसरे दिन मैंने महात्माजी से विदा होकर प्रस्थान कर दिया। महात्माजी बड़े प्रेम से मुझसे गले मिले और चलते-चलते एक ऐसी क्रिया बतलाई, जिसके द्वारा हम अपनी आयु और बल को इच्छानुसार बढ़ा सकते हैं। तब मुझे गले से लगाकर एक यान पर बैठा दिया। यान मुझे हरिद्वार पहुँचाकर आप ही आप लौट गया। यह उनके यानों की विशेषता है। हरिद्वार से मैं सीधा हर्षपुर पहुँचा और एक सप्ताह तक माता-पिता की सेवा में रहकर यहाँ आ पहुँचा। तुमसे मिलने के पहले मैं कई बार इधर से निकला। यहाँ की हरएक वस्तु मेरी जानी-पहचानी मालूम होती थी। दो-चार पुराने दोस्त भी दिखाई दिये, पर उनसे मैं बोला नहीं।

एक दिन जगदीशपुर की सैर भी कर आया। ऐसा मालूम होता था कि मेरी बाल्यावस्था वही गुजरी हो। तुमसे मिलने के पहले कई दिन तक गहरी चिन्ता मे पडा रहा। एक विचित्र शंका होती थी। अकस्मात् तुमसे पार्क मे मुलाकात हो गई। कह नहीं सकता तुम्हें देखकर मेरे चित्त की क्या दशा हुई। ऐसा जी चाहता था, दौडकर हृदय से लगा लूँ। महात्मा के अन्तिम शब्द भूल गये और मैं वहीं तुमसे मिल गया।

देवप्रिया ने रोते हुए कहा—प्राणनाथ, आपके दर्शन पाते ही मेरा हृदय गद्‌गद हो गया। ऐसा मालूम हुआ, मानो आपसे मेरा पुराना परिचय है, मानो मैंने आपको कही देखा है। आपने एक ही दृष्टि में मेरे मन के उन भावो को जाग्रत कर दिया जिन्हें मेरी विलासिता ने कुचल-कुचलकर शिथिल कर दिया था। स्वामी! मै आपके चरणों को स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ लेकिन जब तक जीऊँगी आपकी पवित्र स्मृति को हृदय में संचित रखूँगी।

राजकुमार—प्रिये, तुम्हें मालूम है, विवाह का संबंध देह से नहीं, आत्मा से है। क्या आत्मा अनन्त और अमर नहीं है?

देवप्रिया ने उसका कोई उत्तर न दिया। प्रश्नसूचक नेत्रो से राजकुमार की ओर ताकने लगी।

राजकुमार—तो अब तुम्हें मेरे साथ चलने में कोई आपत्ति तो नहीं है?

देवप्रिया ने रुँधे हुए कंठ से कहा—प्राणनाथ, आप मुझसे यह प्रश्न क्यो करते है? आप मेरा उद्धार कर रहे हैं, आपको छोडकर और किसकी शरण जाऊँगी। अब तो मुझे आप मार-मारकर भी भगायें तो आपका दामन न छोड़ूँगी। आह! स्वामी। यह शुभ अवसर जीते-जी मिलेगा, इसकी तो स्वप्न में आशा न थी। मेरा सौभाग्य-सूर्य इतने दिनो के बाद फिर उदय होगा, यह तो कदाचित् मेरे देवताओं को भी न मालूम होगा। न-जाने किसके पुण्य-प्रताप से मुझे यह दिन

देखना नसीब हुआ है। कौन स्त्री इतनी सौभाग्यवती हुई है? आपको पाकर मैं सब कुछ पा गई। अब मुझे किसी बात की अभिलाषा नहीं रही। आपकी चेरी हूँ, वही चेरी जो एक बार आपके ऊपर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुकी है।

राजकुमार ने रानी को कंठ से लगाकर कहा---यह हमारा पुनर्संयोग है!

देवप्रिया—नही प्राणनाथ, मैं इसे प्रेम-मिलन समझती हूँ।

यह कहते-कहते रानी चुप हो गई। उसे याद आ गया कि मुझ-जैसी वृद्धा ऐसे देव-रूप पुरुष के योग्य नही है। अभी दया के वशीभूत होकर यह मेरा उद्धार कर देंगे, पर दया कब तक प्रेम का पार्ट खेलेगी? सम्भव है, इनकी यह दया-दृष्टि मुझ पर सदैव बनी रहे, लेकिन मैं रनिवास की युवतियो को कौन मुँह दिखलाऊँगी, जनता के सामने कैसे निकलूँगी। उस दशा मे तो दया मेरी रक्षा न कर सकेगी। यह अवस्था तो असह्य हो जायगी। राजकुमार ने उसके मनोभावों को ताडकर कहा—प्रिये, तुम्हारे मन मे शंकाओ का उठना स्वाभाविक है; लेकिन उन्हें निकाल डालो। मै विलास का दास होता तो तुम्हारे पास आता ही नही। मेरे चित्त की वृत्ति वासना की ओर नही है। मै रूप-सौन्दर्य का मूल्य जानता हूँ और उसका मुझ पर कोई आकर्षण नही हो सकता। मेरे लिए तो तुम इस रूप में भी उतनी ही प्रिय हो। हाँ, तुम्हारे सन्तोष के लिए मुझे वह क्रियाएँ करनी पडेंगी जो महात्माजी ने चलते-चलते बताई थी। जिसके द्वारा मैने मायान्धकार पर विजय पाई, उसके द्वारा काल की गति को भी पलट सकूँगा। मुझे पूरा विश्वास है कि मुरझाया हुआ फूल एक बार फिर हरा होगा, वही छवि, वही सौरभ, वही कोमलता, फिर इसकी बलाएँ लेगी। लेकिन तुम्हें भी मेरे लिए बडे-बडे त्याग करने पडेंगे। सम्भव है, तुम्हें राजभवन के बदले किसी वन में वृक्षो के नीचे रहना पडे, रत्न-जटित आभूषणो के बदले वन्य-पुष्पो पर ही संतोष करना पडेगा। क्या तुम उन कष्टो को सह सकोगी?

देवप्रिया—आपको पाकर अब मुझे किसी वस्तु की इच्छा नहीं रही। विलास सच्चे सुख की छायामात्र है। जिसे सच्चा सुख मयस्सर हो, वह विलास की तृष्णा क्यो करे ?

रानी मुँह से तो ये बाते कह रही थी, किन्तु इस विचार से उसका चित्त प्रफुल्लित हो रहा था कि मेरा यौवन-पुष्प फिर खिलेगा, सौन्दर्य दीपक फिर जलेगा।

राजकुमार—तो अब मै जाता हूँ। कल संध्या-समय फिर आऊँगा। इस बीच मे तुम यात्रा की तैयारियाँ कर लेना।

देवप्रिया ने राजकुमार का हाथ पकड़कर कहा—मै भी आपके साथ चलूँगा ! मुझे न-जाने कैसी शंकाएँ हो रही हैं। मैं अब एक क्षण के लिए भी आपको न छोड़ूँगी।

राजकुमार—यो चलने से लोगो के मन मे भाँति-भाँति की शंकाएँ होंगी। मेरे पुनर्जन्म का किसी को विश्वास न आयेगा, लोग समझेंगे कि ऐब को छिपाने के लिए यह कथा गढ ली गई है, केवल कुत्सित प्रेम को छिपाने के लिए यह कौशल किया गया है। इसलिए तुम किसी तीर्थ-यात्रा......

रानी ने बात काटकर कहा—मुझे अब लोक-निन्दा का भय नहीं है। मै यह कहने को तैयार हूँ कि अपने प्राणपति के साथ जा रही हूँ।

राजकुमार ने मुस्कराकर कहा—अगर मै तुमसे दगा करूँ तो ?

रानी ने भयातुर होकर कहा—प्राणनाथ, ऐसी बातें न करो। मैं अपने को तुम्हारे चरणो पर अर्पण कर चुकी, लेकिन कुसंस्कारो से मुक्त नहीं हुई हूँ। यदि कोई आदमी अभी आकर मुझसे कहे कि इन्द्रजाल का खेल कर रहे है, तो मैं नहीं कह सकती, मेरी क्या दशा होगी। अलौकिक बातो को समझने के लिए अलौकिक बुद्धि चाहिये और मैं इससे वञ्चित हूँ। मै निष्कपट भाव से अपने मन की दुर्बलताएँ प्रकट कर रही हूँ। मुझे क्षमा कीजियेगा। अभी बहुत दिन गुजरेंगे जब मै

इस स्वप्न को यथार्थ समझूँगी। उस स्वप्न को भंग न कीजिये। इस वक्त यहीं आराम कीजिये, रात बहुत बीत गई है। मैं तब तक कुँअर विशालसिंह को सूचना दे दूँ कि आकर अपना राज्य सँभालें। कल मैं प्रातःकाल आपके साथ चलने को तैयार हो जाऊँगी।

यह कहकर रानी ने राजकुमार के लिए भोजन लाने की आज्ञा दी। जब वह भोजन करने लगे तो आप ही खड़ी होकर उन्हें पंखा झलने लगी। ऐसा स्वर्गीय आनन्द। उसे कभी प्राप्त न हुआ था। उसके मर्म-स्थल में प्रेम और उल्लास की तरंगें उठ रही थीं। जी चाहता था कि इसी क्षण इसके चरणों पर गिरकर प्राण त्याग दूँ।

कुँवर साहब लेटने गये तो रानी ने विशालसिंह के नाम पत्र लिखा—प्रिय कुँवर विशालसिंहजी!

इतने दिनों तक मायाजाल में फँसे रहने के बाद अब मेरा चित्त संसार से विरक्त हो गया है। मैं तीर्थयात्रा करने जा रही हूँ और शायद फिर न लौटूँगी। किसी तीर्थस्थान में ही जीवन के शेष दिन काटूँगी। आपको उचित है कि आकर अपने राज्य का भार सँभालें। मुझे खेद है कि मेरे कारण आपको बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़े। आपने मेरे साथ जो अनीति की, उसे मैं भी क्षमा करती हूँ। मायान्ध होकर हम सभी ऐसा करते हैं। मेरी आपसे इतनी ही प्रार्थना है कि मेरी लौंडियों और सेवकों पर दया कीजियेगा। मैं अपने साथ कोई चीज नहीं ले जा रही हूँ। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना कि आपको सद्बुद्धि दें और आपकी कीर्ति देश-देशान्तरों में फैले। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द की और कोई बात न होगी।

आपकी

देवप्रिया।

यह पत्र लिखकर रानी ने मेज़ पर रखा ही था कि उन्हें ख़याल आया, मैं अपना राज्य क्यों छोड़ूँ? मैं हर्षपुर से भी तो इसकी देख-भाल कर सकती हूँ। साल में महीने-दो-महीने के लिए यहाँ आना कौन

मुश्किल है। चलकर प्राणनाथ से पूछूँ, उन्हें इसमे कोई आपत्ति तो न होगी। वह राजकुमार के कमरे के द्वार तक गई, पर अन्दर कदम न रख सकी। खयाल आया, समझेंगे अभी तक इसको तृष्णा बनी हुई है! उलटे पाँव लौट आई।

रात के दो बज गये थे। देवप्रिया यात्रा की तैयारियाँ कर रही थी। उसके मन मे प्रश्न हो रहा था, कौन-कौन-सी चीज़े साथ ले जाऊँ। पहले वह अपने वस्त्रागार मे गई। शीशे की आलमारियो मे एक-से-एक अपूर्व वस्त्र चुने हुए रखे थे। इस समूह मे से उसने खोजकर अपनी सोहाग की साडी निकाल ली, जिसे पहने आज २५ वर्ष हो गये थे। आज उसकी शोभा और सभी साडियो से बढी हुई थी। उसके सामने सभी कपडे फीके जँचते थे।

फिर वह अपने आभूषणो की कोठरी मे गई। इन आभूषणो पर वह जान देती थी। ये उसे अपने राज्य से भी प्रिय थे। लेकिन इस समय इनको छूते हुए उसे ऐसा भय हो रहा था, मानो चोरी कर रही है। उसने बहुत साहस करके रत्नो का वह सन्दूकचा निकाला जिस पर इन २५ बरसो मे उसने लाखो रुपए खर्च किये थे और उसे अञ्चल में छिपाये हुए बाहर निकली। इस लोभ को वह संवरण न कर सकी।

वह अपने कमरे मे आकर बैठी ही थी कि गुजराती आकर खडी हो गई। देवप्रिया ने पूछा—तू अभी सोई नही?

गुजराती—सरकार नही सोई तो मै कैसे सोती?

'मै तो कल तीर्थ-यात्रा करने जा रही हूँ।'

'मुझे भी साथ ले चलियेगा?'

'नही, मै अकेली जाऊँगी।'

'सरकार लौटेंगी कब तक?'

'कह नही सकती। बहुत दिन लगेंगे। बता, तुझे क्या उपहार दूँ?'

'मै तो एक बार माँग चुकी। लूँगी तो वही लूँगी।'

'मै तुझे नौलखा हार दूँगी।'

'उसकी मुझे इच्छा नहीं।'

'जडाऊ कङ्गन लेगी ?'

'जी नहीं !'

'वह रत्न लेगी जो बडी-बडी रानियों को मयस्सर नहीं ?'

'जी नहीं, वह आप ही को शोभा देगा।'

'पागल है क्या ! एक रत्न के दाम एक लाख से कम न होंगे !'

'वह आप ही को मुबारक हो।'

रानी ने रत्नों का सन्दूकचा खोलकर गुजराती के सामने रख दिया और बोली—इनमें से जो चाहे निकाल ले।

गुजराती ने सन्दूकचा बन्द करके कहा—मुझे इनमें से कोई भी न चाहिये। रानी ने एक क्षण सोचने के बाद कहा—अच्छा जा वही मूर्ति ले ले।

'आप खुशी से दे रही हैं न ?'

'हां, खुशी से !'

'भगवान् आपका भला करें।'

यह कहकर गुजराती खुश-खुश वहां से चली गई। थोडी ही देर के बाद रानी भी रत्नों का सन्दूकचा लिये हुए उठीं और तोशख़ाने में जाकर उसे उसी स्थान पर रख दिया जहां से निकाला था। उनका मन एक क्षण के लिए चञ्चल हो गया, लेकिन उसे धिक्कारती हुई वह जल्दी से अपने कमरे में चली आईं।

सहसा कोयल की कूक सुनाई दी। रानी ने चौंककर द्वार का परदा हटा दिया। उषा की स्निग्ध, मधुर, संगीतमय आभा किवाडों के शीशों द्वारा कमरे में प्रवेश कर रही थी, मानो किसी नवयौवना के हृदय में प्रेम का उदय हो रहा हो। उसी नवयौवना की भांति देवप्रिया उस अरुण छटा को देखकर सशंक हो उठीं।

उसी समय राजकुमार द्वार पर आकर खडे हो गये।

रानी ने कहा—मैं तैयार हूँ।

राजकुमार—और मेरा जी चाहता है कि यहीं तुम्हारी उपासना मे अपना जीवन व्यतीत करूँ। मुझे अपने उद्देश्य मे जितनी सफलता हुई, इसकी मुझे आशा न थी। इस देश के सिवा ऐसी देवियाँ और कहाँ है जो इस भाँति अपने को आदर्श पर वलिदान कर दें।

आध घण्टे के वाद राजकुमार भी संध्योपासना करके निकले। मोटर तैयार थी। दोनो आदमी उस पर आ बैठे। जब मोटर चली तो रानी ने उस भवन को करुण नेत्रो से देखा और एक ठण्डी साँस ली। उसके हृदय की वही दशा हो रही रही थी जो किसी नववधू की पति के घर जाते समय होती है। शोक और हर्ष, आशा और दुराशा, ममत्व और विराग का एक विचित्र समावेश हो गया था।

घर के नौकर-चाकर, सिपाही-प्यादे सजल नेत्र खडे थे और मोटर चली जा रही थी।

१०

मुं० वज्रधर विशालसिह के पास से लौटे तो उनकी तारीफो के पुल वाँध दिये। रईस हो तो ऐसा हो, आँखो मे कितनी शील है! किसी तरह छोडते ही न थे। यो समझो कि लडकर आया हूँ। प्रजा पर तो जान देते है। बेगार की चरचा सुनी तो उनकी आँखो मे आँसू भर आये। उनके ज़माने मे प्रजा चैन करेगी। यही तारीफ सुनकर चक्रधर को विशालसिह से श्रद्धा-सी हो गई। उनसे मिलने गये और समिति के संरक्षको मे उनका नाम दर्ज कर लिया। तब से कुँवर साहब समिति की सभाओ मे नित्य सम्मिलित होते थे। अतएव अब की जब उनके यहाँ कृष्णाष्टमी का उत्सव हुआ तो चक्रधर अपने सहवर्गियो के साथ उसमे शरीक हुए।

कुँवर साहब कृष्ण के परम भक्त थे। उनका जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाते थे ; लेकिन उनकी स्त्रियों में इस विषय मे भी मतभेद था। उनके व्रत भी अलग-अलग थे। तीजे के सिवा तीनो कोई एक व्रत न रखती थी। रोहिणी कृष्ण की उपासक थी तो वसुमती राम-नवमी का उत्सव मनाती थी। नवरात्र का व्रत रखती, ज़मीन पर सोती और दुर्गापाठ सुनती। रही रामप्रिया, वह कोई व्रत न रखती थी। कहती—इस दिखावे से क्या फायदा। मन शुद्ध चाहिये, यही सबसे बड़ी भक्ति है। जब मन मे ईर्ष्या और द्वेष की ज्वाला दहक रही हो, राग और मत्सर की आँधी चल रही हो, तो कोरा व्रत रखने से क्या होगा। ये उत्सव आपस में प्रीति बढ़ाने के लिए बनाये जाते हैं जब प्रीति के बदले द्वेष बढ़े तो उनका न मानना ही अच्छा!

संध्या हो गई थी। बाहर कँवल, झाड़ आदि जलाये जा रहे थे। चक्रधर अपने मित्रों के साथ बनाव-सजाव में मसरूफ थे। संगीत-समाज के लोग आ पहुँचे थे। गाना शुरू होनेवाला ही था कि वसुमती और रोहिणी मे तकरार हो गई। वसुमती को यह तैयारियाँ एक आँख न भाँती थीं। उसके रामनवमी के उत्सव में सन्नाटा-सा रहता था। विशालसिंह उस उत्सव से उदासीन रहते थे। वसुमती इसे उनका पक्षपात समझती थी। उसके विचार मे उनके इस असाधारण उत्साह का कारण कृष्ण की भक्ति नहीं, रोहिणी के प्रति स्नेह था। वह दिल में जल-भुन रही थी। रोहिणी सोलहो शृङ्गार किये पकवान बना रही थी। कदाचित् वसुमती को जलाने ही के लिए आप-ही आप गीत गा रही थी। घर के सब बरतन उसी के यहाँ बिधे हुए थे। उनका यह अनुराग देख-देखकर वसुमती के कलेजे पर साँप-सा लोट रहा था। वह इस रंग में भंग मिलाना चाहती थी। सोचते-सोचते उसे एक बहाना मिल गया। महरी को भेजा, जाकर रोहिणी से कह—घर के बरतन जल्दी खाली कर दें। दो थालियाँ, दो बटलोहियाँ, कटोरे, कटोरियाँ माँग लो। उनका उत्सव रात-भर होगा, तो कोई कब तक

बैठा उनकी राह देखता रहेगा। उनके उत्सव के लिए दूसरे क्यों भूखो मरें। महरी गई, तो रोहिणी ने तन्नाकर कहा—आज इतनी जल्द भूख लग गई। रोज़ तो आधी रात तक बैठी रहती है, आज ८ बजे ही भूख सताने लगी। अगर ऐसी ही जल्दी है, तो कुम्हार के यहाँ से हाँडियाँ मगवा लें। पत्तल मैं दे दूँगी।

वसुमती ने यह सुना, तो आग हो गई। हाँडियाँ चढाये मेरे दुश्मन! जिनकी छाती फटती हो, मैं क्यो हाँडी चढाऊँ। उत्सव मनाने की वडी साध है, तो नये वासन क्यो नही मँगवा लेती। अपने कृष्ण से कह दे, गाडी-भर वरतन भेज दे। क्या जबरदस्ती दूसरो को भूखो मारेगी?

रोहिणी रसोई से वाहर निकलकर वोली—बहन, ज़रा मुँह सँभालकर बाते करो। देवताओ का अपमान करना अच्छा नही।

वसुमती—अपमान तो तुम करती हो, जो व्रत के दिन यो बन-ठनकर अठिलाती फिरती हो। देवता रङ्ग-रूप नही देखते, भक्ति देखते है।

रोहिणी—मै बनती-ठनती हूँ, तो दूसरो की आँखे क्यो फूटती है। भगवान् के जन्म के दिन भी न बनूँ-ठनूँ? उत्सव मे तो रोया नहीं जाता!

वसुमती—तो और बनो-ठनो, मेरे अँगूठे से, आँखे क्यो फोडती हो। आखे फूट जायँगी, तो चिल्लू भर पानी भी तो न दोगी?

रोहिणी—क्या आज लडने ही पर उतारू होकर आई हो क्या? भगवान् सब दुःख दे, बुरी संगति न दे। लो, यही गहने-कपडे आँखो मे गड रहे है न? न पहनूँगी। जाकर बाहर कह दे, पकवान-प्रसाद किसी हलवाई से बनवा ले। मुझे क्या, मेरे मन का हाल भगवान् आप जानते हैं, पडेगी उन पर, जिनके कारण यह सब हो रहा है।

यह कहकर रोहिणी अपने कमरे मे चली गई। सारे गहने-कपडे

उतार फेके और मुँह ढाँपकर चारपाई पर पड रही। ठाकुर साहब ने यह समाचार सुना, तो माथा कूटकर बोले—इन चांडालिनो से आज शुभोत्सव के दिन भी शांत नही बैठा जाता। इस ज़िन्दगी से तो मौत ही अच्छी। घर में आकर रोहिणी से बोले—तुम मुँह ढाँपकर सो रही हो या उठकर पकवान बनाती हो? रोहिणी ने पडे-पडे उत्तर दिया—फट पडे वह सोना, जिससे टूटें कान। ऐसे उत्सव से बाज आई, जिसे देखकर घरवालो की छाती फटे।

विशालसिंह—तुमसे तो बार-बार कहा कि उनके मुँह न लगा करो। एक चुप सौ वक्ताओ को हरा देता है। दो बाते सुन लो, तो तीसरी बात कहने का साहस ही न हो। फिर, तुमसे बडी ठहरी, यों भी तुमको उनका लिहाज़ करना चाहिये।

जिस दिन वसुमती ने विशालसिंह को वह व्यग-बाण मारा था, जिसकी कथा हम कह चुके है, उसी दिन से उन्होने उससे बोलना-चालना छोड दिया था, उससे कुछ डरने लगे थे, उसके क्रोध की भयंकरता का अन्दाज़ पा लिया था; किन्तु रोहिणी क्यो दबने लगी थी। यह उपदेश सुना तो झुँझलाकर बोली—रहने भी दो, जले पर निमक छिडकते हो! जब बडा देख-देखकर जले, बात-बात पर कोसे, तो कोई कहाँ तक उसका लिहाज करे। उन्हें मेरा रहना ज़हर लगता है, तो क्या करूँ, घर छोडकर निकल जाऊँ? वह इसी पर लगी हुई है। तुम्ही ने उन्हें सिर चढा लिया है। कोई बात होती है, तो मुझी को उपदेश करने दौडते हो, सीधा पा लिया है न। उनसे बोलते हुए तो तुम्हारा भी कलेजा काँपता है। तुम न शह देते, तो उनकी मजाल थी कि यों मुझे आँखे दिखाती!

विशालसिंह—तो क्या मै उन्हे सिखा देता हूँ कि तुम्हें गालियाँ दें?

रोहिणी—और क्या करते हो। जब घर मे कोई न्याय करनेवाला नही रहा, तो इसके सिवा और क्या होगा। सामने तो चुडैल की तरह

बैठी हुई है, जाकर पूछते क्यों नहीं ? मुँह में कालिख क्यों नहीं लगाते ? दूसरा पुरुष होता, जूते से बात करता, सारी शेखी किरकिरी हो जाती। लेकिन तुम तो खुद मेरी दुर्गति करानी चाहते हो। न जाने क्यों व्याह का शौक चर्राया था।

कुँवर साहब ज्यों-ज्यों रोहिणी का क्रोध शांत करने की चेष्टा करते थे, वह और भी बफरती जाती थी, और बार-बार कहती थी, तुमने मेरे साथ क्यो व्याह किया। यहाँ तक कि अन्त में वह भी गर्म पड गये और बोले—और पुरुष स्त्रियों से विवाह करके कौन-सा सुख देते है, जो मै तुम्हें नही दे रहा हूँ। रही लडाई-झगडे की बात। तुम न लडना चाहो, तो कोई ज़बरदस्ती तुमसे न लडेगा। आख़िर, रामप्रिया भी तो इसी घर मे रहती है !

रोहिणी—तो मै स्वभाव ही से लडाकू हूँ ?

विशालसिंह—यह मै थोडे ही कहता हूँ।

रोहिणी—और क्या कहते हो। साफ़-साफ़ कहते हो, फिर मुकरते क्यो हो। मै स्वभाव ही से झगडालू हूँ, दूसरो से छेड-छेडकर लडती हूँ। यह तुम्हें बहुत दूर की सूझी। वाह ! क्या नई बात निकाली है। कहीं छपवा दो, तो खासा इनाम मिल जाय।

विशालसिंह—तुम बरबस बिगड रही हो। मैंने तो दुनिया की बात कही थी और तुम अपने ऊपर ले गईं।

रोहिणी—क्या करूँ, भगवान् ने बुद्धि ही नही दी। वहाँ भी अन्धेर नगरी और चौपट राजा होगे। बुद्धि तो दो ही प्राणियो के हिस्से में पडी है, एक आपकी ठकुराइन के, नही-नही, महारानीजी के, और दूसरे आपके। जो कुछ बची-खुची वह आपके सिर मे ठूँस दी गई।

विशालसिंह—अच्छा, उठकर पकवान बनाती हो कि नही ? कुछ ख़बर है, ६ बज रहे है !

रोहिणी—मेरी बला जाती है ! उत्सव मनाने की लालसा नहीं रही।

विशालसिंह—तो तुम न उठोगी ?

रोहिणी—नही, नही, नही, या और दो-चार बार कह दूँ ?

वसुमती सायबान मे बैठी हुई दोनो प्राणियो की बाते तन्मय होकर सुन रही थी, मानो कोई सेनापति अपने प्रतिपक्षी की गति का अध्ययन कर रहा हो, कि कब यह चूके और कब मै दबा बैठूँ। क्षण-क्षण मे परिस्थिति बदल रही थी। कभी अवसर आता हुआ दिखाई देता था, फिर निकल जाता था, यहाँ तक कि अन्त में द्वन्दी की एक भद्दी चाल ने उसे अपेक्षित अवसर दे ही दिया। विशालसिंह को मुँह लटकाये रोहिणी की कोठरी से निकलते देखकर बोली—क्या मेरी सूरत देखने की कसम खा ली है, या तुम्हारे हिसाब मै घर मे हूँ ही नहीं ? बहुत दिन तो हो गये रूठे, क्या जन्म-भर रूठे ही रहोगे ? क्या बात है ? इतने उदास क्यों हो ?

विशालसिंह ने ठिठककर कहा—तुम्हारी ही लगाई हुई आग को तो शांत कर रहा था, पर उलटे हाथ जल गये। यह क्या रोज-रोज़ तूफान खडा किया करती हो ? चार दिन की जिन्दगी है, इसे हँस-खेलकर नही काटते बनता। मै तो ऐसा तङ्ग हो गया हूँ कि जी चाहता है कही भाग जाऊँ। सच कहता हूँ, ज़िन्दगी से तङ्ग आ गया। यह सब आग तुम्हीं लगा रही हो।

वसुमती—कहाँ भागकर जाओगे ? नई-नवेली बहू को किस पर छोडोगे ? नये व्याह का कुछ सुख तो उठाया ही नहीं ?

विशालसिंह—बहुत उठा चुका, जी भर गया।

वसुमती—बस, एक व्याह और कर लो, एक ही और, जिसमे चौकडी पूरी हो जाय।

विशालसिंह—क्यो बैठे-बैठे जलाती हो, विवाह क्या किया था, भोग-विलास करने के लिए, या तुमसे कोई बडी सुन्दरी होगी ?

वसुमती—अच्छा, आओ सुनते जाओ।

विशालसिंह—जाने दो, लोग बाहर बैठे होंगे।

वसुमती—अब यही नहीं अच्छा लगता। अभी घण्टे-भर वहाँ बैठे चिकनी-चुपडी बातें करते रहे तो नहीं देर हुई, मैं एक क्षण के लिए बुलाती हूँ तो भागे जाते हो। इसी दोअक्खी की तो तुम्हें सजा मिल रही है।

यह कहकर वसुमती ने आकर उनका हाथ पकड लिया, घसीटती हुई अपने कमरे मे ले गई और चारपाई पर बैठाती हुई बोली—औरतो को सिर चढाने का यही फल है। उसे तो तब चैन आये, जब घर मे अकेली वही रहे। जब देखो तब अपने भाग्य को रोया करती है, किस्मत फूट गई, मा-बाप ने कुएँ में झोक दिया, ज़िन्दगी खराब हो गई। यह सब मुझसे नही सुना जाता, यही मेरा अपराध है। तुम उसके मन के नही हो, सारी जलन इसी बात की है। पूछो, तुझे कोई जबरदस्ती निकाल लाया था, या तेरे मा-बाप की आँखे फूट गई थी। वहा तो यह मंसूबे थे कि कि बेटी मुहज़ोर है ही, जाते-ही-जाते राजा को अपनी मुट्ठी मे करके रानी बन बैठेगी! क्या मालूम था कि यहाँ उसका सिर कुचलने को कोई और भी बैठा हुआ है। यही बाते खोलकर कह देती हूँ, तो तिलमिला उठती है, और तुम दौडते हो मनाने, बस उसका मिज़ाज और आसमान पर चढ जाता है। दो दिन, चार दिन, दस दिन, रूठी पडी रहने दो, फिर देखो भीगी बिल्ली हो जाती है या नहीं, यह चिरंतन का नियम है कि लोहे को लोहा ही काटता है। कुमानुस के साथ कुमानुस बनने ही से काम चलता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने नारियो के विषय मे जो कहा है बिलकुल सच कहा है।

विशालसिह—यहाँ वह खटवाँस लेकर पडी, अब पकवान कौन बनाये?

वसुमती—तो क्या जहा मुर्गा न होगा, वहाँ सवेरा ही न होगा? आखिर जब वह नही थी, तब भी तो जन्माष्टमी मनाई जाती थी। ऐसा कौन-सा बडा काम है। मै बनाये देती हूँ। भगवान् थोडे ही बाँटे हुए हैं, या मुझे जन्माष्टमी से कोई वैर है।

विशालसिंह ने पुलकित होकर कहा—बस, तुम्हारी इन्हीं बातों पर मेरी जान जाती है। कुलवन्ती स्त्रियों का यही धर्म है। आज तुम्हारी धानी साड़ी ग़ज़ब ढा रही है। कवियों ने सच कहा है, यौवन प्रौढ होकर और भी अजेय हो जाता है। चन्द्रमा का पूरा प्रकाश भी तो पूर्णिमा ही को होता है।

वसुमती—खुशामद करना कोई तुमसे सीख ले!

विशालसिंह—जो चीज़ कम हो, वह और मँगवा लेना।

विजय के गर्व मे फूली हुई वसुमती आधी रात तक बैठी भाँति-भाँति के पकवान बनाती रही। द्वेष ने बरसों की सोई हुई कृष्ण-भक्ति को जाग्रत कर दिया। वह इन कामो मे निपुण थी। श्रम से उसे कुछ रुचि-सी थी। निचले न बैठा जाता था। रोहिणी जिस काम को दिन भर मे मर-मरकर करती, उसे वह दो घण्टे मे हँसते-हँसते पूरा कर देती थी। रामप्रिया ने उसे बहुत व्यस्त देखा, तो वह भी आ गई और दोनो मिलकर काम करने लगी।

विशालसिंह बाहर गये और कुछ देर गाना सुनते रहे, पर वहाँ जी न लगा। फिर भीतर चले आये और रसोई घर के द्वार पर मोढा डाल बैठ गये। भय था कि कही रोहिणी कुछ कह न बैठे और दोनो फिर लड मरें।

वसुमती ने कहा—बाहर क्या हो रहा है?

विशालसिंह—गाना शुरू हो गया है। तुम इतनी महीन पूरियाँ कैसे बनाती हो? फट नहीं जातीं!

वसुमती—चाहूँ तो इससे भी महीन बेल दूँ, कागज मात हो जाय।

विशालसिंह—मगर खिलेगी न!

वसुमती—खिला के दिखा दूँ। डब्बे-सी फूल जाये तो कहना। अभी महारानी नही उठी क्या? इससे छिपकर बाते सुनने की बुरी लत है। न-जाने क्या चाहती है। बहुत औरते देखीं, लेकिन इसके ढङ्ग सबसे निराले हैं। मुहब्बत तो इसे छू नहीं गई। अभी तुम तीन दिन

बाहर पड़े कराहते रहे ; पर कसम ले लो, जो उसका मन ज़रा भी मैला हुआ हो। हम लोगों के प्राण तो नखों मे समा गये थे, रात-दिन देवी-देवता मनाया करती थीं, वहाँ पान चबाने, आईना देखने और माँग-चोटी करने के सिवा दूसरा काम न था। ऐसी औरतो पर कभी विश्वास न करे।

विशालसिंह—सब देखता हूँ और समझता हूँ, निरा गधा नहीं हूँ।

वसुमती—यही तो रोना है कि तुम देखकर भी नहीं देखते, समझ-कर भी नहीं समझते। जहाँ उसने मुस्कराकर, आँखें मटकाकर बातें की, मस्त हो गये। लल्लो-चप्पो किया करते हो ! थर-थर काँपते रहते हो कि कहीं रानी नाराज न हो जाये। आदमी मे सब ऐब हो मेहरबस न हो। ऐसी कोई बड़ी सुन्दरी भी तो नहीं है !

रामप्रिया—एक समय सखी सूअर सुन्दर ! जवानी में कौन नहीं सुन्दर होता।

वसुमती—उसके माथे से तो तुम्हारे तलुवे अच्छे। सात जन्म ले, तो भी तुम्हारी गर्द को न पहुँचे।

विशालसिंह—मैं मेहरबस हूँ ?

वसुमती—और क्या हो ?

विशालसिंह—मै उसे ऐसी-ऐसी बाते कहता हूँ कि वह भी याद करती होगी। घण्टों रुलाता हूँ।

वसुमती—क्या जाने, यहाँ तो जब देखती हूँ, उसे मुसकराते हो देखती हूँ। कभी आँखों मे आँसू न देखा।

रामप्रिया—कड़ी बात भी हँसकर कही जाय, तो मीठी हो जाती है।

विशालसिंह—हँसकर नहीं कहता। डाँटता हूँ, फटकारता हूँ। लौंडा नहीं हूँ कि सूरत पर लट्टू हो जाऊँ।

वसुमती—डाटते होगे ; मगर प्रेम के साथ। ढलती उम्र में सभी

मर्द तुम्हारे ही जैसे हो जाते है, कोई नई बात नहीं है। मै तुमसे लाख रूठी रहूँ ; लेकिन तुम्हारा मुँह ज़रा भी गिरा देखा और जान निकल गई। सारा क्रोध हवा हो जाता है। वहाँ जब तक जाकर पैर न सुहलाओ, तलुवो से आँखें न मलो, देवीजी सीधी ही नही होती। कभी-कभी तुम्हारी लम्पटता पर मुझे हँसी आती है। आदमी कडे दम चाहिये, जिसका अन्याय देखे, उसे डाट दे, बुरी तरह डाट दे, खून पी लेने पर उतारू हो जाय। ऐसे ही पुरुषों से स्त्रियां प्रेम करती है। भय विना प्रीति नही होती। आदमी ने स्त्री की पूजा की और उनकी आखो से गिरा। जैसे घोडा पैदल और सवार पहचानता है, उसी तरह औरत भी भकुए और मर्द को पहचानती है। जिसने सच्चा आसन जमाया और लगाम कडी रक्खी, उसकी जय है। जिसने रास ढीली कर दी, उसकी कुशल नहीं।

रामप्रिया मुँह फेरकर मुसकराई और बोली—बहन, तुम सब गुर बताये देती हो, किसके माथे जायगी ?

वसुमती—हम लोगों की लगाम कब ढीली थी ?

रामप्रिया—जिसकी लगाम कभी कडी न थी, वह आज लगाम तानने से थोडी ही काबू मे आई जाती है, और दुलत्तियाँ झाडने लगेगी।

विशालसिंह—मैने तो अपनी जान मे कभी लगाम ढीली नही की, आज ही देखो, कैसी फटकार बताई।

वसुमती—क्या कहना है, ज़रा मूँछें खडी कर लो, लाओ पगिया मै सँवार दूँ। यह नहीं कहते कि उसने ऐसी-ऐसी चोटें की कि भागते ही बनी !

सहसा किसी के पैरो की आहट पाकर वसुमती ने द्वार की ओर देखा। रोहिणी रसोई के द्वार से दबे पाँव चली जा रही थी। मुँह का रङ्ग उड गया। दाँतों से ओठ दबाकर बोली—छिपी खडी थी। मैने साफ़ देखा। अब घर में रहना मुश्किल है। देखो क्या रङ्ग लाती है।

विशालसिंह ने पीछे की ओर सशंक नेत्रों से देखकर कहा—बड़ा गज़ब हुआ। चुडैल सब सुन गई होगी। मुझे ज़रा भी आहट न मिली।

वसुमती—ऊँह, रानी रूठेंगी अपना सोहाग लेंगी। कोई कहां तक डरे। आदमियों को बुलाओ, यह सब सामान यहाँ से ले जायें।

भादों की अँधेरी रात थी। हाथ को हाथ न सूझता था। मालूम होता था, पृथ्वी पाताल में चली गई है, या किसी विराट जन्तु ने उसे निगल लिया है। मोमबत्तियों का प्रकाश उस तिमिरसागर में पाँव रखते काँपता था। विशालसिंह भोग के पदार्थ थालियों में भरवा-भरवाकर बाहर रखवाने में लगे हुए थे। कोई केले छील रहा था, कोई खीरे काटता था, कोई दोनों में प्रसाद सजा रहा था। एकाएक रोहिणी एक चादर ओढे हुए घर से निकली और बाहर की ओर चली। विशालसिंह देहलीज़ के द्वार पर खड़े थे। इस भरी सभा में उसे यों निश्शंक भाव से निकलते देखकर उनका रक्त खौलने लगा। ज़रा भी न पूछा, कहाँ जाती हो, क्या बात है। मूर्ति की भाँति खड़े रहे। दिल ने कहा, जिसने इतनी बेहयाई की, उससे और क्या आशा की जा सकती है। वह जहाँ जाती हो जाय, जो जी में आये करे, जब उसने मेरा सिर ही नीचा कर दिया, तो मुझे उसकी क्या परवा। बेहया, निर्लज्ज तो है ही, कुछ पूछूँ और गालियाँ देने लगे, तो मुँह में और भी कालिख लग जाय। जब उसको मेरी परवा नहीं, तो मैं क्यों उसके पीछे दौड़ूँ। और सब लोग अपने-अपने काम में लगे हुए थे। रोहिणी पर किसी की निगाह न पड़ी।

इतने में चक्रधर उनसे कुछ पूछने आये, तो देखा कि महरी उनके सामने खड़ी है और वह क्रोध से आंखें लाल किये कह रहे हैं—अगर वह मेरी लौंडी नहीं है, तो मैं उसका गुलाम नहीं हूँ। अगर वह स्त्री होकर इतनी आपे से बाहर हो सकती है, तो मैं पुरुष होकर उसके पैरों पर सिर न रक्खूँगा। जहाँ इच्छा हो जाय; मैंने तिलांजलि दे दी। अब इस घर में कदम न रखने दूँगा। लौटकर आई, तो सिर काट

लूँगा। (चक्रधर को देखकर) आपने भी तो उसे देखा होगा ?

चक्रधर—किसे ? मै तो केले छील रहा था। कौन गया है ?

विशालसिंह—मेरी छोटी पत्नीजी रूठकर बाहर चली गई है। आपसे घर का वास्ता है। आज औरतो में किसी बात पर तकरार हो गई। अब तक तो मुँह फुलाये पडी रही, अब यह सनक सवार हुई। मेरा धर्म नही है कि मै उसे मनाने जाऊँ। आप धक्के खायगी। उसके सिर पर कुबुद्धि सवार है।

चक्रधर—किधर गई है महरी ?

महरी—क्या जानूँ बाबूजी, मै तो बरतन मॉज रही थी। सामने ही गई होगी !

चक्रधर ने लपककर एक लालटेन उठा ली और बाहर निकलकर दायें-बायें निगाहे दौडाते, तेज़ी से कदम बढ़ाते हुए चले। कोई दो सौ कदम गये होगे कि रोहिणी एक वृक्ष के नीचे खडी दिखाई दी। ऐसा मालूम होता था कि वह छिपने के लिए कोई जगह तलाश कर रही है। चक्रधर उसे देखते ही लपककर समीप जा पहुँचे और कुछ कहना चाहते थे कि रोहिणी खुद बोली—क्या मुझे पकडने आये हो ? अपना भला चाहते हो, तो लौट जाओ, नही अच्छा न होगा। मै अब उन पापियों का मुँह न देखूँगी।

चक्रधर—आप इस अँधेरे में कहाँ जायेगी ? हाथ को तो हाथ सूझता नही।

रोहिणी—अँधेरे मे डर उसे लगता है, जिसका कोई अवलम्ब हो। जिसका संसार मे कोई नही, उसे किसका भय ? गला काटनेवाले अपने होते है, पराये गला नही काटते। जाकर कह देना, अब आराम से टांगे फैलाकर सोइये, अब तो कांटा निकल गया।

चक्रधर—आप कुँवर साहब के साथ बडा अन्याय कर रही है। बेचारे लज्जा और शोक से खडे रो रहे है।

रोहिणी—क्यो बाते बनाते हो, वह रोयेंगे और मेरे लिए ! मै

जिस दिन मर जाऊँगी, उस दिन घी के चिराग़ जलेंगे। संसार मे ऐसे अभागे प्राणी भी होते है। अपने माँ-बाप को क्या कहूँ। ईश्वर उन्हें नरक मे भी चैन न दे। सोचे थे, बेटी रानी हो जायगी, तो हम राज करेंगे। यहाँ जिस दिन डोली से उतरी, उसी दिन से सिर पर विपत्ति सवार हुई। पुरुष रोगी हो, बूढा हो, दरिद्र हो; पर नीच न हो। ऐसा नीच निर्दयी आदमी संसार मे न होगा। नीचो के साथ नीच बनना ही पडता है।

चक्रधर – आपके यहाँ खडे होने से कुँवर साहब का कितना अपमान हो रहा है, इसकी आपको ज़रा भी फ़िक्र नहीं ?

रोहिणी—तुम्हीं ने तो मुझे रोक रखा है ?

चक्रधर - आख़िर आप कहाँ जा रही है ?

रोहिणी—तुम पूछनेवाले कौन होते हो ? मेरा जहाँ जी चाहेगा, जाऊँगी। उनके पाँव में मेहदी नही रची हुई थी। उन्होने मुझे घर से निकलते भी देखा। क्या इसका मतलब यह नहीं है कि अच्छा हुआ, सिर से बला टली। दुत्कार सहकर जीने से मर जाना अच्छा है।

चक्रधर—आपको मेरे साथ चलना होगा।

रोहिणी—तुम्हें यह कहने का क्या अधिकार है ?

चक्रधर – जो अधिकार सचेत को अचेत पर, सजान को अजान पर होता है, वही अधिकार मुझे आपके ऊपर है। अन्धे को कुएँ में गिरने से बचाना हर एक प्राणी का धर्म है।

रोहिणी—मै न अचेत हूँ, न अजान, न अन्धी। स्त्री होने ही से बावली नहीं हो गई हूँ। जिस घर में मेरा पहनना-ओढना हँसना-बोलना देख-देखकर दूसरो की छाती फटती है, जहाँ कोई अपनी बात तक नहीं पूछता, जहाँ तरह-तरह के आक्षेप लगाये जाते है, उस घर मे फिर कदम न रखूँगी।

यह कहकर रोहिणी आगे बढी कि चक्रधर ने सामने खडे होकर कहा—आप आगे नहीं जा सकतीं !

रोहिणी—ज़बरदस्ती रोकोगे ?

चक्रधर—हाँ, ज़बरदस्ती रोकूँगा।

रोहिणी—सामने से हट जाओ।

चक्रधर मैं आपको एक कदम भी आगे न रखने दूँगा। सोचिये, आप अपनी अन्य बहनों को किस कुमार्ग पर ले जा रही हैं। जब वे देखेंगी कि बड़े-बडे घरो की स्त्रियां भी रूठकर घर से निकल खडी होती हैं, तो उन्हें भी ज़रा-ज़रा-सी बात पर ऐसा ही साहस होगा या नही ? नीति के विरुद्ध कोई काम करने का फल अपने ही तक नही रहता, दूसरों पर उसका और भी बुरा असर पडता है।

रोहिणी—मैं तो चुपके से चली जाती थी, तुम्ही तो ढिढोरा पीट रहे हो।

चक्रधर—जिस तरह रण से भागते हुए सिपाही को देखकर लोगो को उससे घृणा हो जाती है, यहाँ तक कि उसका वध कर डालना भी पाप नही समझा जाता, उसी तरह कुल मे कलक लगानेवाली स्त्रियो से भी सबको घृणा हो जाती है और कोई उसकी सूरत नहीं देखना चाहता। हम चाहते हैं कि सिपाही गोली और आग के सामने अटल खडा रहे। उसी तरह हम यह भी चाहते हैं कि स्त्री सब कुछ झेलकर अपनी मर्यादा का पालन करती रहे। हमारा मुँह हमारी देवियो ही से उज्ज्वल है और जिस दिन हमारी देवियाँ इस भाँति मर्यादा की हत्या करने लगेगी, उस दिन हमारा सर्वनाश हो जायगा।

रोहिणी रुँधे हुए कण्ठ से बोली—क्या चाहते हो कि फिर उसी आग मे जलूँ ?

चक्रधर—हाँ, यही चाहता हूँ। रणक्षेत्र में फूलों की वर्षा नही होती। मर्यादा की रक्षा करना उससे कही कठिन है।

रोहिणी—लोग हँसेगे कि घर से निकली तो थी बडे दिमाग से, आख़िर झख मारकर लौट आई।

चक्रधर—ऐसा वही कहेंगे, जो नीच और दुर्जन हैं। समझदार लोग तो आपकी सराहना ही करेंगे।

रोहिणी ने कई मिनट तक आगा-पीछा करने के बाद कहा—अच्छा चलिये, आप भी क्या करेंगे। कोई बुरा कहे या भला। हाँ, कुँवर साहब को इतना ज़रूर समझा दीजियेगा कि जिन महारानी को आज वह घर की लक्ष्मी समझे हुए हैं, वह एक दिन उनको बड़ा धोखा देंगी। मैं कितनी ही आपे से बाहर हो जाऊँ; पर अपना ही प्राण दूँगी। वह बिगड़ेगी तो प्राण लेकर छोड़ेगी। आप किसी मौके से इतना ज़रूर समझा दीजियेगा।

यह कहकर रोहिणी घर की ओर लौट पड़ी; लेकिन चक्रधर का उसके ऊपर कहाँ तक असर पड़ा और कहाँ तक स्वयम् अपनी सहज बुद्धि का, इसका अनुमान कौन कर सकता है। वह लौटते वक्त लज्जा से सिर नहीं गड़ाये हुए थी। गर्व से उसकी गरदन उठी हुई थी। उसने अपनी टेक को मर्यादा की वेदी पर बलिदान कर दिया हो, पर इसके साथ ही उन व्यंग्य-वाक्यों की रचना भी करती थी, जिनसे वह कुँवर साहब का स्वागत करना चाहती थी।

जब दोनों आदमी घर पहुँचे तो विशालसिंह अभी तक वहाँ मूर्तिवत् खड़े थे, महरी भी खड़ी थी। भक्तजन अपना-अपना काम छोड़कर लालटेन की ओर ताक रहे थे। सन्नाटा छाया हुआ था।

रोहिणी ने देहलीज़ में कदम रखा; मगर ठाकुर साहब ने उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखा। जब वह अंदर चली गई, तो उन्होंने चक्रधर का हाथ पकड़ लिया और बोले—मैं तो समझता था, किसी तरह न आयेगी, मगर आप खींच ही लाये। क्या बहुत बिगड़ती थी? चक्रधर ने कहा—आपको कुछ नहीं कहा। मुझे तो बहुत समझदार मालूम होती है, हाँ मिज़ाज नाज़ुक है, बात बरदाश्त नहीं कर सकती।

विशालसिंह—मैं यहाँ से टला तो नहीं; लेकिन सच पूछिये तो ज़्यादती मेरी ही थी। मेरा क्रोध बहुत बुरा है। अगर आप न पहुँच जाते, तो बड़ी मुश्किल पड़ती। जान पर खेल जानेवाली स्त्री है।

आपका यह एहसान कभी न भूलूँगा। देखिये तो, सामने कुछ रोशनी-सी मालूम हो रही है। बैंड भी बज रहा है। क्या माजरा है?

चक्रधर—हाँ मशालें और लालटेनें हैं। बहुत से आदमी भी साथ हैं।

और लोग भी आंगन में उतर आये और सामने देखने लगे। सैकड़ों आदमी, कतार बाँधे, मशालों और लालटेनों के साथ चले आ रहे थे। आगे-आगे दो अश्वारोही भी नज़र आते थे। बैंड की मनोहर ध्वनि आ रही थी। सब खड़े देख रहे थे; पर किसी की समझ में न आता था, माजरा क्या है।

११

सभी लोग बड़े कुतूहल से आनेवालों को देख रहे थे। कोई दस-बारह मिनट में वह विशालसिंह के घर के सामने आ पहुँचे। आगे-आगे दो घोड़ों पर मुं० वज्रधर और ठाकुर हरिसेवकसिंह थे। पीछे कोई पचीस-तीस आदमी साफ़-सुथरे कपड़े पहने चले आते थे। दोनों तरफ़ कई झंडी-बरदार थे, जिनकी झंडियाँ हवा में लहरा रही थीं। सबके पीछे बाजेवाले थे। मकान के सामने पहुँचते ही दोनों सवार घोड़ों से उतर पड़े और हाथ बांधे हुए कुँवर साहब के सामने आकर खड़े हो गये। मुंशीजी की सज-धज निराली थी। सिर पर एक शमला था, देह पर एक नीची आबा। ठाकुर साहब भी हिन्दुस्तानी लिबास में थे। मुंशीजी खुशी से मुस्कराते थे, ठाकुर साहब का मुख मलिन था।

ठाकुर साहब बोले—दीनबन्धु, हम सब आपके सेवक आपकी सेवा में यह शुभ सूचना देने के लिए हाजिर हुए हैं कि महारानीजी ने राज्य से विरक्त होकर तीर्थ-यात्रा को प्रस्थान किया है और अब हमें श्रीमान

की छत्र-छाया के नीचे आश्रय लेने का वह स्वर्णावसर प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम सदैव ईश्वर से प्रार्थना करते रहते थे। यह हमारा परम सौभाग्य है कि आज से श्रीमान् हमारे भाग्य-विधाता हुए। यह वह पत्र है, जो महारानीजी ने श्रीमान् के नाम लिख रखा था।

यह कहकर ठाकुर साहब ने रानी का पत्र विशालसिंह के हाथ में रख दिया। कुँवर साहब ने एक ही निगाह में उसे आद्योपांत पढ़ लिया और उनके मुख पर मन्द हास्य की आभा झलकने लगी। पत्र जेब मे रखते हुए बोले—यद्यपि महारानी की तीर्थ-यात्रा का समाचार जानकर मुझे अत्यन्त खेद हो रहा है; लेकिन इस बात का सच्चा आनन्द भी है कि उन्होंने निवृत्ति-मार्ग पर पग रखा; क्योंकि ज्ञान ही से मुक्ति प्राप्त होती है। मेरी ईश्वर से यही विनय है कि उसने मेरी गरदन पर जो कर्तव्य-भार रखा है, उसे सँभालने की मुझे शक्ति दे और प्रजा के हित मेरा जो धर्म है, उसके पालन करने की शक्ति प्रदान करे। आप लोगों को मै विश्वास दिलाता हूँ कि मै यथासाध्य अपना कर्तव्य पालन करने मे ऊँचे आदर्शों को सामने रखूँगा; लेकिन मेरी सफलता बहुत कुछ आपही लोगो की सहानुभूति और सहकारिता पर निर्भर है और मुझे आशा है कि आप मेरी सहायता करने में किसी प्रकार की कोताही न करेंगे। मै इस समय यह जता देना भी अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मै अत्याचार का घोर शत्रु हूँ और ऐसे महापुरुषों को, जो प्रजा पर अत्याचार करने मे अभ्यस्त हो रहे है, मुझसे ज़रा भी नरमी की आशा न रखनी चाहिये।

इस कथन में शिष्टता की मात्रा अधिक और नीति की बहुत कम थी, फिर भी सभी राज्य-कर्मचारियो को यह बाते अप्रिय जान पड़ीं। सब के कान खडे हो गये और हरिसेवक को तो ऐसा मालूम हुआ कि यह निशाना मुझी पर है। उनके प्राण सूख गये। सभी आपस मे काना-फूसी करने लगे।

कुँवर साहब ने लोगो को ले जाकर फ़र्श पर बैठाया और खुद

मसनद लगाकर बैठे। नज़राने की निरर्थक रस्म अदा होने लगी। बैंड ने बधाई देना शुरू की। चक्रधर ने पान और इलायची से सबका सत्कार किया। कुँवर साहब का बार-बार जी चाहता था कि घर मे जाकर यह सुख-सम्वाद सुनाऊँ, पर मौका न देखकर ज़ब्त किये हुए थे। मुन्शी वज्रधर अब तक ख़ामोश बैठे थे। ठाकुर हरिसेवक को यह खुशख़बरी सुनाने का मौका देकर उन्होने अपने ऊपर कुछ कम अत्याचार न किया था। अब उनसे चुप न रह गया। बोले—हुजूर, आज सबसे पहले मुझी को यह हाल मालूम हुआ।

हरिसेवक ने इसका खण्डन किया—मैं भी तो आपके साथ ही पहुँच गया था?

वज्रधर—आप मुझसे ज़रा देर बाद पहुँचे। मेरी आदत है कि बहुत सवेरे उठता हूँ। देर तक सोता तो, तो एक दिन भी तहसीलदारी न निभती। बडी हुकूमत की जगह है हुजूर! वेतन तो कुछ ऐसा ज्यादा न था; पर हुजूर, अपने इलाके का बादशाह था। ख़ैर, ड्योढ़ी पर पहुँचा, तो सन्नाटा छाया हुआ था। न दरबान का पता, न सिपाही का। घबराया कि माजरा क्या है! बेधडक अन्दर चला गया। मुझे देखते ही गुजराती रोती हुई दौडी और तुरन्त रानी साहब का ख़त लाकर मेरे हाथ में रख दिया। रानीजी ने उससे शायद यह खत मेरे ही हाथ मे देने को कहा था।

हरिसेवक—यह तो कोई बात नही। मैं पहले पहुँचता, तो मुझे ख़त मिलता। आप पहले पहुँचे आपको मिल गया।

वज्रधर—आप नाराज़ क्यो होते है। मैंने तो केवल अपना विचार प्रकट किया है। वह ख़त पढ़कर मेरी जो दशा हुई, बयान नही कर सकता। कभी रोता था, कभी हँसता था। बस, यही जी चाहता था कि उडकर हुजूर को ख़बर दूँ। ठीक उसी समय ठाकुर साहब पहुँचे। है यही बात न दीवान साहब?

हरिसेवक—मुझे बाहर ही खबर मिल गई थी। आदमियो

को चौकसी रखने की ताकीद कर रहा था।

वज्रधर—आपने बाहर से जो कुछ किया हो, मुझे उसकी ख़बर नहीं, अन्दर आप उसी वक्त पहुँचे जब मैं ख़त लिये खड़ा था। मैंने आपको देखते ही कहा—सब कमरों में ताला लगवा दीजिये और दफ्तर में किसी को न जाने दीजिये।

हरिसेवक—इतनी मोटी-सी बात के लिए मुझे आपकी सलाह की आवश्यकता न थी।

वज्रधर—यह मेरा मतलब नहीं। अगर मैंने तहसीलदारी की है, तो आपने भी दीवानी की है। सरकारी नौकरी न सही, फिर भी काम एक ही है। जब हर एक कमरे में ताला पड़ गया, दफ़्तर का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया, तो सलाह होने लगी कि हुज़ूर को कैसे ख़बर दी जाय। कोई कहता था, आदमी दौड़ाया जाय, कोई मोटर से ख़बर भेजना चाहता था। मैंने यह मुनासिब नहीं समझा। इतनी उम्र तक भाड़ नहीं झोंका किया हूँ। जगदीशपुर खबर भेजकर सब कर्मचारियों को बुलाने की राय दी। दीवान साहब को भी मेरी राय पसन्द आई। इसी कारण इतनी देर हुई। हुज़ूर, सारे दिन दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। आज दोहरी खुशी का दिन है। गुस्ताख़ी माफ़, मिठाइयाँ खिलवाइये और महफ़िल जमाइये! एक हफ्ते तक गाना होना चाहिये। हुज़ूर, यही देना-दिलाना, खाना-खिलाना याद रहता है।

विशालसिंह—अब इस वक्त तो भजन होने दीजिये, कल वही महफ़िल जमेगी।

वज्रधर—हुज़ूर, मैंने पहले ही से गाने-बजाने का इन्तज़ाम कर लिया है। लोग आते ही होंगे। सारे शहर के अच्छे-अच्छे उस्ताद बुलाये हैं, हुज़ूर, एक-से-एक गुणी। सभी का मुजरा होगा।

अभी तहसीलदार साहब ने बात भी पूरी न की थी कि झिनकू ने अन्दर आकर सलाम किया और बोला—दीनानाथ, उस्ताद लोग आ गये हैं। हुक्म हो तो हाज़िर हों।

मुंशीजी तुरत बाहर गये और उस्तादों को हाथों-हाथ ले आये। कोई १०-१२ आदमी थे, सब-के-सब बूढ़े, किसी का मुँह पोपला, किसी की कमर झुकी हुई, कोई आँखों का अन्धा! उनका पहनावा देखकर ऐसा अनुमान होता था, कम से कम तीन शताब्दी पहले के मनुष्य है। बडी नीची चपकन, जिस पर हरी गोट लगी हुई, वही चुनावदार पाजामा, वही उलझी हुई तार-तार पगडी कमर में पटका बँधा हुआ। दो-तीन उस्ताद नंग-धडंग थे, जिनके बदन पर एक लंगोटी के सिवा और कुछ न था। यही सरस्वती के उपासक थे और इन्ही पर उनकी कृपा दृष्टि थी।

उस्तादों ने अन्दर आकर वर साहब और अन्य सज्जनों को झुक-झुककर सलाम किया और घुटने तोड-तोड बैठे। मुंशीजी ने उनका परिचय कराना शुरू किया। यह उस्ताद मेंडू खाँ है, महाराज अलवर के दरबारी है, वहाँ से हज़ार रुपए सालाना वजीफा मिलता है। आप सितार बजाने में अपना सानी नही रखते। किसी के यहाँ आते-जाते नही, केवल भगवद्भजन किया करते हैं। यह चन्दू महाराज है, पखावज के पक्के उस्ताद! ग्वालियर के महाराज इनसे लाख-लाख कहते हैं कि आप दरबार मे रहिये, दो हज़ार रुपए महीने तक देते हैं; लेकिन आपको काशी से प्रेम है। छोडकर नही जाते। यह उस्ताद फ़ज़लू है, राग-रागिनियों के फिकैत, स्वरो से रागिनियों की तसवीर खींच देते है। एक बार आपने लाट साहब के सामने गाया था। जब गाना बन्द हुआ, तो साहब ने आपके पैरो पर अपनी टोपी रख दी और घंटा छाती पीटते रहे। डॉक्टरों ने जब दवा दी तो उनका नशा उतरा।

विशालसिंह—यहाँ वह रागिनी न गवाइयेगा, नहीं तो लोग लोट-लोट जायेंगे। यहाँ तो डाक्टर भी नहीं हैं।

वज्रधर—हुजूर, रोज़-रोज यह बातें थोडे ही होती है। बडे से बडे कलावन्त को भी जिन्दगी मे केवल एक बार गाना नसीब होता है।

फिर लाख सिर मारें, वह बात नहीं पैदा होती।

परिचय के बाद गाना शुरू हुआ फ़ज़लू ने मलार छेड़ा और मुन्शीजी झूमने लगे। फ़ज़लू भी मुन्शीजी ही को अपना कमाल दिखाते थे। उनके सिवा और उनकी निगाह में कोई था ही नही। उस्ताद लोग 'वाह-वाह' का तार बांधे हुए थे, मुन्शीजी आंखें बन्द किये सिर हिला रहे थे, और महफिल के लोग एक-एक करके बाहर चले जा रहे थे। दो-चार सज्जन बैठे थे वह वास्तव मे सो रहे थे। फ़ज़लू को इसकी ज़रा भी परवा न थी कि लोग उसका गाना पसन्द करते है या नही। उस्ताद उस्तादों के लिए गाते है। गुणी गुणियो ही की निगाह मे सम्मान पाने का इच्छुक होता है। जनता की उसे परवा नहीं होती। अगर उस महफिल में अकेले मुंशीजी होते, तो भी फ़ज़लू इतना ही मस्त होकर गाता। धनी लोग ग़रीबों की क्या परवा करते हैं ? विद्वान् मूर्खों को कब ध्यान मे लाते है। इसी भाँति गुणीजन अनाडियों की परवा नही करते। उनकी निगाह मे मर्मज्ञ का स्थान धन और वैभव के स्वामियो से कही ऊँचा होता है।

मलार के बाद फ़ज़लू ने 'निर्गुण' गाना शुरू किया। रागिनी का नाम तो उस्ताद ही बता सकते है। उस्तादो के मुख में सभी रागिनियाँ समान रूप धारण करती हुई मालूम होती है। आग में पिघलकर सभी धातुएँ एक-सी हो जाती हैं। मुंशीजी को इस राग ने मतवाला कर दिया। पहले बैठे-बैठे झूमते थे, फिर खडे होकर झूमने लगे। झूमते-झूमते, आप-ही-आप उनके पैरो में एक गति-सी होने लगी। हाथों के साथ पैरो से भी ताल देने लगे। यहां तक की वह नाचने लगे। उन्हें इसकी ज़रा भी झेप न थी कि लोग दिल में क्या कहते होगे। गुणी को अपना गुण दिखाते शर्म नहीं आती। पहलवान को अखाडे मे ताल ठोककर उतरते क्या शर्म ! जो लडना नहीं जानते, वे ढकेलने से भी अखाडे मे नही जाते। सभी कर्मचारी मुँह फेर-फेर हँसते थे। जो लोग बाहर चले गये थे वे भी यह ताण्डव-नृत्य देखने

के लिए आ पहुँचे। यहाँ तक कि विशालसिंह भी हँस रहे थे। मुंशीजी के बदले देखनेवालों को झेंप हो रही थी ; लेकिन मुंशीजी अपनी धुन में मग्न थे। गुणी गुणियों के सामने अनुरक्त हो जाता है। अनाड़ी लोग तो हँस रहे थे और गुणी लोग नृत्य का आनन्द उठा रहे थे। नृत्य ही अनुराग की चरम सीमा है।

नाचते-नाचते आनन्द से विह्वल होकर मुन्शीजी गाने लगे। उनका मुख अनुराग से प्रदीप्त हो रहा था। आज बड़े सौभाग्य से और बहुत दिनों के बाद उन्हें यह स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिला था। उनकी बूढ़ी हड्डियों मे इतनी चपलता कहाँ से आ गई, इसका निश्चय करना कठिन है। इस समय तो उनकी फुर्ती और चुस्ती जवानों को भी लज्जित करती थी। उनका उछलकर आगे जाना, फिर उचककर पीछे आना, झुकना और मुड़ना और एक-एक अङ्ग को फेरना वास्तव मे आश्चर्यजनक था। इतने मे कृष्ण के जन्म का मुहूर्त आ पहुँचा। सारी महफिल खड़ी हो गई और सभी उस्तादों ने एक स्वर से मंगल-गान शुरू किया। साज़ों के मेल ने समां बांध दिया। केवल दो ही प्राणी ऐसे थे, जिन्हें इस समय भी चिन्ता घेरे हुए थी। एक तो ठाकुर हरिसेवकसिंह थे, दूसरे कुँवर विशालसिंह। एक को यह चिन्ता लगी हुई थी कि देखें कल क्या मुसीबत आती है, दूसरे को यह फिक्र थी कि इस दुष्ट से क्योंकर पुरानी कसर निकालूँ। चक्रधर अब तक तो लज्जा से मुँह छिपाये बाहर खड़े थे, मंगल-गान समाप्त होते ही आकर प्रसाद बाँटने लगे। किसी ने मोहन-भोग का थाल उठाया, किसी ने फलों का, कोई पञ्चामृत बाँटने लगा। हरबोंग-सा मच गया। कुँवर साहब ने मौका पाया, तो उठे और मु० वज्रधर को इशारे से बुला, दालान में लेजाकर पूछने लगे—दीवान साहब ने तो मौका पाकर खूब हाथ साफ़ किये होंगे।

वज्रधर—मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं देखी। बेचारे दिन भर सामान की जांच-पड़ताल करते रहे। घर तक न गये।

विशालसिंह—यह सब तो आपके कहने से किया। आप न होते, तो न-जाने क्या गज़ब ढाते।

वज्रधर—मेरी बातो का यह मतलब न था कि वह आपसे कीना रखते हैं। इन छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान देना उनका काम नही है। मुझे तो यह फिक्र थी कि कहीं सामान न उठ जाय, उन्हें यह फिक्र थी कि दफ्तर के कागज़ तैयार हो जायें। मै किसी की बुराई न करूँगा। दीवान साहब को आपसे अदावत थी, यह मै मानता हूँ। रानी साहब का नमक खाते थे और आपका बुरा चाहना उनका धर्म था; लेकिन अब वह आपके सेवक हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि वह उतनी ही ईमानदारी से आपकी सेवा करेंगे।

विशालसिंह—आपको पुरानी कथा मालूम नही। इसने मुझ पर बडे-बडे जुल्म किये हैं। इसी के कारण मुझे जगदीशपुर छोडना पडा। बस चला होता तो इसने मुझे कत्ल करा दिया होता।

वज्रधर—गुस्ताख़ी माफ कीजियेगा। आपका बस चलता तो क्या रानीजी की जान बच जाती या दीवान साहब ज़िन्दा रहते? उन पिछली बातो को भूल जाइये। भगवान् ने आज आपको ऊँचा रुतबा दिया है। अब आपको उदार होना चाहिये। ऐसी छोटी बाते आपके दिल मे न आनी चाहिये। मातहतो से उनके अफसर के विषय मे कुछ पूछ-ताछ करना अफसर को ज़लील कर देता है। मैने इतने दिनो तहसीलदारी की; लेकिन नायब साहब तहसीलदार के विषय मे चपरासियो से कभी कुछ नही पूछा। मै तो ख़ैर इन मामलो को समझता हूँ; लेकिन-दूसरे मातहतो से आप ऐसी बाते करेंगे, तो वह अपने अफसर की हज़ारों बुराइयाँ आपसे करेगा। मैने ठाकुर साहब के मुँह से एक बात भी आज ऐसी नही सुनी, जिससे यह मालूम हो कि वह आपसे कोई अदावत रखते है।

विशालसिंह ने कुछ लज्जित होकर कहा—मै आपको ठाकुर साहब का मातहत नही, अपना मित्र समझता हूँ और इसी नाते से मैने

आपसे यह बात पूछी थी। मैने निश्चय कर लिया था कि सबसे पहला वार इन्हीं पर करूँगा; लेकिन आपकी बातो ने मेरा विचार पलट दिया। आप भी उन्हें समझा दीजियेगा कि मेरी तरफ से कोई शंका न रखें। हाँ, प्रजा पर अत्याचार न करें।

वज्रधर—नौकर अपने मालिक का रुख़ देखकर ही काम करता है। रानीजी को हमेशा रुपए की तंगी रहती थी। दस लाख की आमदनी भी उनके लिए काफी न होती थी। इसी हालत में ठाकुर साहब को मजबूर होकर प्रजा पर सख्ती करनी पडती थी। वह कभी आमदनी और ख़र्च का हिसाब न देखती थी। जिस वक्त जितने रुपयो की उन्हें ज़रूरत पडती थी; ठाकुर साहब को देने पडते थे। जहाँ तक मुझे मालूम है, इस वक्त रोकड मे एक पैसा भी नही है। गद्दी के उत्सव के लिए रुपयो का कोई-न-कोई और प्रबन्ध करना पडेगा। दो ही उपाय है या तो कर्ज़ लिया जाय, या प्रजा से वसूल किया जाय। कर्ज़ पहले ही बहुत हो चुका है, प्रजा से वसूल कर लेने के सिवा ठाकुर साहब और क्या कर सकते है?

विशालसिह—गद्दी के उत्सव के लिए मै प्रजा का गला नहीं दबाऊँगा। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि उत्सव मनाया ही न जाय।

वज्रधर—हुजूर यह क्या फरमाते है। ऐसा भी कही हो सकता है?

विशालसिह—ख़ैर, देखी जायगी। ज़रा अन्दर जाकर रानियों को भी खुशख़बरी दे आऊँ!

यह कहकर कुँवर साहब घर मे गये। सबसे पहले रोहिणी के कमरे में कदम रखा। वह पीछे की तरफ की खिडकी खोले खडी थी। उस अन्धकार मे उसे अपने भविष्य का रूप खिचा हुआ नज़र आता था। पति की निष्ठुरता ने आज उसकी मदांध आंखे खोल दी थीं। वह घर से निकलने की भूल स्वीकार करती थी; लेकिन कुँवर साहब का उसको मनाने न जाना बहुत अखर रहा था, इस अपराध का इतना

कठोर दण्ड ! ज्यो-ज्यो वह उस स्थिति पर विचार करती थी, उसका अपमानित हृदय और भी तड़प उठता था।

कुँवर साहब ने कमरे मे कदम रखते ही कहा—रोहिणी, ईश्वर ने आज हमारी अभिलाषा पूरी की। जिस बात की आशा न थी, वह पूरी हो गई।

रोहिणी—अब तो घर मे रहना और भी मुश्किल हो जायगा जब कुछ न था, तभी मिज़ाज न मिलता था। अब तो आकाश पर चढ़ जायगा। काहे को कोई जीने पायेगा ?

विशालसिंह ने दुखित होकर कहा—प्रिये, यह इन बातो का समय नही है। ईश्वर को धन्यवाद दो कि उसने हमारी विनय सुन ली।

रोहिणी—जब अपना कोई रहा ही नही, तो राजपाट लेकर चाटूँगी ?

विशालसिह को क्रोध तो आया, लेकिन इस भय से कि बात बढ़ जायगी, कुछ बोले नही, वहाँ से वसुमती के पास पहुँचे। वह मुँह लपेटे पड़ी हुई थी। जगाकर बोले क्या सोती हो, उठो खुशख़बरी सुनाये।

वसुमती – पटरानीजी को तो सुना ही आये, मै सुनकर क्या करूँगी। अब तक जो बात मन में थी, वह आज तुमने खोल दी तो यहाँ बचा हुआ सत्तू खानेवाले पाहुने नहीं हैं !

विशालसिह - क्या कहती हो ? मेरी समझ मे नही आता।

वसुमती—हाँ, अभी भोले नादान बच्चे हो, समझ मे क्यो आयेगा। गरदन पर छुरी फेर रहे हो, ऊपर से कहते हो तुम्हारी बाते समझ मे नहीं आती ! ईश्वर मौत भी नही दे देते कि इस आये-दिन की दाँता-किल-किल से छूटती। यह जलन अब नही सही जाती। पीछेवाली आगे आई, आगेवाली कोने में। मै यहाँ से बाहर पाँव निकालती, तो सिर काट लेते, नही तो कैसी खुशामदे कर रहे हो। किसी के हाथो मे भी जस नही, किसी की लातो मे भी जस है।

विशालसिंह दुखी होकर बोले—यह बात नही है वसुमती, तुम जान-बूझकर नादान बनती हो। मैं इधर ही आ रहा था, ईश्वर से कहता हूँ, उसका कमरा अँधेरा देखकर चला गया कि देखूँ क्या बात है।

वसुमती मुझसे बातें न बनाओ समझ गये। तुम्हें तो ईश्वर ने नाहक मूँछें दे दी। औरत होते तो किसी भले आदमी का घर बसता। जांघ तले की स्त्री सामने से निकल गई और तुम टुकुर-टुकुर ताकते रहे। मै कहती हूँ, आख़िर तुम्हें यह क्या हो गया है। उसने कही कुछ कर करा तो नहीं दिया। जैसे काया ही पलट गई। जो एक औरत को काबू में नही रख सकता, वह रियासत का भार क्या सँभालेगा ?

यह कहकर वह उठी और झल्लाई हुई छत पर चली गई। विशाल-सिंह कुछ देर उदास खडे रहे, तब रामप्रिया के कमरे मे प्रवेश किया। वह चिराग के सामने बैठी कुछ लिख रही थी। पति की आहट पाकर सिर ऊपर उठाया, तो आंखो मे आंसू भरे हुए थे। विशालसिंह ने चौंककर पूछा क्या बात है प्रिये ? रो क्यो रही हो ! मै तुम्हें एक खुशख़बरी सुनाने आया हूँ।

रामप्रिया ने आंसू पोंछते हुए कहा – सुन चुकी हूँ ; मगर आप उसे खुशख़बरी कैसे कहते हैं। मेरी प्यारी बहन सदा के लिए ससार से चली गई, क्या यह खुशख़बरी है ? अब तक और कुछ नही था तो उसकी कुशल-क्षेम का समाचार तो मिलता रहता था। अब क्या मालूम होगा कि उस पर क्या बीत रही है। दुखिया ने संसार का कुछ सुख न देखा। उसका तो जन्म ही व्यर्थ हुआ। रोते ही रोते उम्र बीत गई।

यह कहते-कहते रामप्रिया फिर सिसक-सिसककर रोने लगी।

विशालसिंह—उन्होंने पत्र मे तो लिखा है कि मेरा मन संसार से विरक्त हो गया।

रामप्रिया—इसको विरक्त होना नही कहते। यह तो जिन्दगी से

घबराकर भाग जाना है। जब आदमी को कोई आशा नहीं रहती, तो वह मर जाना चाहता है। यह विराग नही है। विराग ज्ञान से होता है, और उस दशा में किसी को घर से निकल भागने की ज़रूरत नहीं होती। जिसे फूलों की सेज पर भी नींद न आती थी, वह पत्थर की चट्टानो पर कैसे सोयेगी। बहन से बडी भूल हुई। क्या अन्त समय ठोकरे खाना ही उनके कर्म में लिखा था ?

यह कहकर वह फिर सिसकने लगी। विशालसिंह को उसका रोना बुरा मालूम हुआ। बाहर आकर महफ़िल मे बैठ गये। मेडूखॉ सितार बजा रहे थे। सारी महफ़िल तन्मय हो रही थी। जो लोग फ़ज़लू का गाना न सुन सके थे, वे भी इस वक्त सिर धुनते और झूमते नज़र आते थे। ऐसा मालूम होता था, मानो सुधा का अनन्त प्रवाह स्वर्ग की सुनहरी शिलाओं से गले मिल-मिलकर नन्ही-नन्ही फुहारो मे किलोल कर रहा हो। सितार के तारो से स्वर्गीय तितलियों की कतारें-सी निकल-निकलकर समस्त वायु-मण्डल में अपने झीने परो से नाच रही थी। उसका आनन्द उठाने के लिए लोगो के हृदय कानो के पास आ बैठे थे।

किंतु इस आनन्द और सुधा के अनन्त प्रवाह मे एक प्राणी हृदय की ताप से विकल हो रहा था। वह राजा विशालसिंह थे। सारी बरात हॅसती थी। दुल्हा रो रहा था।

राजा साहब ऐश्वर्य के उपासक थे। तीन पीढ़ियों से उनके पुरखे यही उपासना करते चले आते थे। उन्होने स्वयं इस देवता की तन-मन से आराधना की थी। आज देवता प्रसन्न हुए थे। तीन पीढ़ियों की अविरल भक्ति के बाद उनके दर्शन मिले थे। इस समय घर के सभी प्राणियों को पवित्र हृदय से उनकी वन्दना करनी चाहिये थी, सब को दौड-दौडकर उनके चरणो को धोना और उनकी आरती करनी चाहिये थी। इस समय ईर्ष्या, द्वेष और क्षोभ को हृदय मे पालना उस देवता के प्रति घोर अभक्ति थी। राजा साहब को महिलाओं पर

दया न आती थी, क्रोध आता था। सोच रहे थे, जब अभी से ईर्ष्या के मारे इनका यह हाल है तो आगे क्या होगा? तब तो आये दिन तलवारें चलेंगी। इनकी सज़ा यही है कि इन्हें इसी जगह छोड़ दूँ। लड़ें जितना लड़ने का बूता हो। रोयें जितना रोने की शक्ति हो। जो रोने के लिए बनाया गया हो, उसे हँसाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। इन्हें राज-भवन में ले जाकर गले का हार क्यों बनाऊँ। उस सुख को, जिसका मेरे जीवन के साथ ही अंत हो जाना है इन क्रूर क्रीडाओं से क्यों नष्ट करूँ?

१२

दूसरी वर्षा भी आधी से ज्यादा बीत गई; लेकिन चक्रधर ने माता-पिता से अहल्या का वृत्तान्त गुप्त ही रखा। जब मुन्शीजी पूछते—वहाँ क्या बातें कर आये, आखिर यशोदानन्दन को विवाह करना है या नहीं? न आते हैं, न चिट्ठी-पत्री लिखते हैं, अजीब आदमी हैं। नहीं करना है तो साफ-साफ कह दें, करना हो तो उसकी तैयारी करें। खवाम-ख्वाह झमेले में फँसा रखा है—तो चक्रधर कुछ इधर-उधर की बातें करके टाल जाते। उधर यशोदानन्दन बार-बार लिखते तुमने मुन्शीजी से सलाह की या नहीं' अगर तुम्हें उनसे कहते शर्म आती हो, तो मैं ही आकर कहूँ? आख़िर इस तरह कब तक समय टालोगे? अहल्या तुम्हारे सिवा किसी और से विवाह न करेगी। यह मानी हुई बात है। फिर उसे वियोग का व्यर्थ क्यों कष्ट देते हो? चक्रधर इन पत्रों के जबाव में भी यही लिखते कि मैं खुद फिक्र में हूँ। ज्यों ही मौका मिला, जिक्र करूँगा। मुझे विश्वास है कि पिताजी राजी हो जायगे।

जन्माष्टमी के उत्सव के बाद मुन्शीजी घर आये, तो उनके हौसले बढ़े हुए थे। राजा साहब के साथ ही उनके सौभाग्य का सूर्य भी उदय होता हुआ मालूम होता था। अब वह अपने ही शहर के किसी रईस के घर चक्रधर की शादी कर सकते थे। अब इस बात की ज़रूरत न होगी कि लड़की के पिता से विवाह का ख़र्च मांगा जाय। अब वह मनमाना दहेज ले सकते थे और धूम-धाम से बरात निकाल सकते थे। राजा साहब ज़रूर उनकी मदद करेंगे; लेकिन मुन्शी यशोदानन्दन को वचन दे चुके थे; इसलिए उनसे एक बार पूछ लेना उचित था। अगर उनकी तरफ से ज़रा भी विलम्ब हो, तो साफ कह देना चाहते थे कि मुझे आपके यहाँ विवाह करना मजूर नही। यो दिल मे निश्चय करके एक दिन भोजन करते समय उन्होंने चक्रधर से कहा—मुन्शी यशोदानन्दन भी कुछ ऊल-जलूल आदमी है। अभी तक कान मे तेल डाले बैठे है। क्या समझते है कि मै ही ग़रजू हूँ।

चक्रधर—उनकी तरफ़ से तो देर नहीं है। वह तो मेरे ख़त का इन्तज़ार कर रहे है।

वज्रधर—मै तो तैयार ही हूँ, लेकिन अगर उन्हें कुछ पसो-पेश हो, तो मैं उन्हें मजबूर नही करना चाहता। उन्हें अख्तियार है, जहाँ चाहें करें। यहाँ सैकडो आदमी मुँह खोले हुए है। उस वक्त जो बात थी, वह अब नही है। तुम आज उन्हें लिख दो कि या तो इसी जाडे मे शादी कर दें या कही और बातचीत करें। मैं उन्हें समझता क्या हूँ। तुम देखोगे कि उनके-जैसे आदमी इसी द्वार पर नाक रगडेगे। आदमी को बिगडते देर लगती है, बनते देर नही लगती। ईश्वर ने चाहा, तो एक बार फिर धूम से तहसीलदारी करूँगा।

चक्रधर ने देखा कि अब अवसर आ गया है। इस वक्त चूके, तो फिर न जाने कब ऐसा अच्छा मौका मिले। आज निश्चय ही कर लेना चाहिये। बोले—उन्हें तो कोई पसोपेश नही, पसोपेश जो कुछ होगा,

आप ही की तरफ़ से होगा। बात यह है कि वह कन्या मुन्शी यशोदा-नन्दन की पुत्री नहीं है।

वज्रधर पुत्री नहीं है! वह तो लड़की ही बताते थे। तुम्हारे सामने की तो बात है। ख़ैर पुत्री न होगी भतीजी होगी, भाञ्जी होगी, नातिन होगी, बहन होगी। मुझे आम खाने से मतलब है या पेड़ गिनने से? जब लड़की तुम्हें पसन्द है और वह अच्छा दहेज दे सकते हैं तो मुझे और किसी बात की चिन्ता नहीं।

चक्रधर—वह लड़की उन्हें किसी मेले में मिली थी। तब उसकी उम्र तीन-चार बरस की थी। उन्हें उस पर दया आ गई, घर लाकर पाला, पढ़ाया, लिखाया।

वज्रधर—(स्त्री से) कितना दग़ाबाज आदमी है! क्या अभी तक लड़की के माँ-बाप का पता नहीं चला?

चक्रधर—जी नहीं, मुन्शीजी ने उनका पता लगाने की बड़ी चेष्टा की, पर कोई फल न निकला।

चक्रधर—अच्छा तो यह किस्सा है! बड़ा झूठा आदमी है, बना हुआ मक्कार।

निर्मला—जो लोग मीठी बातें करते हैं, उनके पेट में छुरी छिपी रहती है। न-जाने किस जाति की लड़की है। क्या ठिकाना। तुम साफ़-साफ़ लिख दो, मुझे नहीं करना है। बस!

वज्रधर—मैं तुमसे तो सलाह नहीं पूछता हूँ। तुम्हीं ने इतने दिनों नेकनामी के साथ तहसीलदारी नहीं की है। मैं खुद जानता हूँ, ऐसे धोखेबाजों के साथ कैसे पेश आना चाहिये?

खाना खाकर दोनों आदमी उठे, तो मुंशीजी ने कहा—कलम-दावात लाओ, मैं इसी वक्त यशोदानन्दन को ख़त लिख दूँ। बिरादरी का वास्ता न होता, तो हरजाने का दावा कर देता।

चक्रधर आरक्त मुख और सकोच-रुग्ध कंठ से बोले—मैं तो वचन दे आया हूँ।

निर्मला—चल, झूठा कहीं का, खा मेरी कसम !

चक्रधर—सच अम्माँ, तुम्हारे सिर की कसम !

वज्रधर—तो यह क्यों नहीं कहते कि तुमने सब कुछ आप-ही-आप तय कर लिया। फिर मुझसे क्या सलाह पूछते हो। क्यों न हो, आख़िर विद्वान् हो, बालिग हो, अपना भला बुरा सोच सकते हो, मुझसे पूछने की ज़रूरत ही क्या; लेकिन तुमने लाख एम० ए० पास कर लिया हो वह तजुरबा कहाँ से लाओगे जो मुझे है। इसीलिए तो वह मक्कार तुम्हें यहाँ से ले गया था। तुमने लड़की सुन्दर देखी, रीझ गये; मगर याद रखो स्त्री में सुन्दरता ही सबसे बड़ा गुण नहीं है। मैं तुम्हें हरगिज़ यह शादी न करने दूँगा।

चक्रधर—अगर और लोग भी यही सोचने लगें, तो सोचिये, उस बालिका की क्या दशा होगी ?

वज्रधर—तुम कोई शहर के क़ाज़ी हो, तुमसे मतलब ? बहुत होगा ज़हर खा लेगी। तुम्हीं को उसकी सबसे ज्यादा फिक्र क्यों हो। सारा देश तो पड़ा हुआ है।

चक्रधर—अगर दूसरों को अपने कर्तव्य का विचार न हो, तो इसका यह मतलब नहीं कि मैं भी अपने कर्तव्य का विचार न करूँ।

वज्रधर—कैसी बेतुकी बातें करते हो जी ! जिस लड़की के माँ-बाप का पता नहीं, उससे विवाह करके क्या ख़ानदान का नाम डुबाओगे ? ऐसी बात करते हुए तुम्हें शर्म भी नहीं आती ?

चक्रधर—मेरा खयाल है कि स्त्री हो या पुरुष, गुण और स्वभाव ही उसमें मुख्य वस्तु है। इसके सिवा और सभी बातें गौण हैं।

वज्रधर—तुम्हारे सिर तो नई रोशनी का भूत नहीं सवार हुआ था, एकाएक यह क्या कायापलट हो गई ?

चक्रधर—मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा तो यही है कि आप लोगों की सेवा करता जाऊँ, आपकी मरज़ी के ख़िलाफ़ कोई काम न करूँ; लेकिन सिद्धान्त के विषय में मजबूर हूँ।

वज्रधर—सेवा करना तो नहीं चाहते, मुँह में कालिख लगाना चाहते हो, मगर याद रखो, तुमने यह विवाह किया तो अच्छा न होगा। ईश्वर वह दिन न लाये कि मैं अपने कुल में कलंक लगते देखूँ।

चक्रधर—तो मेरा भी यही निश्चय है कि मै और कहीं विवाह न करूँगा।

यह कहते हुए चक्रधर बाहर चले आये और बाबू यशोदानन्दन को एक पत्र लिखकर सारा किस्सा बयान किया। उसके अन्तिम शब्द ये थे—'पिताजी राजी नहीं होते और यद्यपि मै सिद्धान्त के विषय में उनसे दबना नहीं चाहता, लेकिन उनसे अलग रहने और बुढापे में उन्हें इतना बडा सदमा पहुँचाने की मै कल्पना भी नहीं कर सकता। मै बहुत लज्जित होकर आपसे क्षमा चाहता हूँ। अगर ईश्वर की यही इच्छा है, तो मै जीवन पर्यन्त अविवाहित ही रहूँगा; लेकिन यह असम्भव है कि कही और विवाह कर लूँ। जिस तरह अपनी इच्छा से विवाह करके माता-पिता को दुःखी करने की कल्पना नहीं कर सकता, उसी तरह उनकी इच्छा से विवाह करके जीवन व्यतीत करने की कल्पना भी मेरे लिए असह्य है।'

इसके बाद उन्होंने दूसरा पत्र अहल्या के नाम लिखा। यह काम इतना आसान न था, प्रेम-पत्र की रचना कवित्त की रचना से कहीं कठिन होती है। कवि चौड़ी सडक पर चलता है, प्रेमी तलवार की धार पर। तीन बजे कही जाकर चक्रधर ने यह पत्र पूरा कर पाया। उसके अन्तिम शब्द ये थे 'प्रिये, मै अपने माता-पिता का वैसा ही भक्त हूँ, जैसा कोई और बेटा हो सकता है, उनकी सेवा मे अपने प्राण तक दे सकता हूँ; किन्तु यदि इस भक्ति और आत्मा की स्वाधीनता में विरोध आ पडे, तो मुझे आत्मा की रक्षा करने मे जरा भी संकोच न होगा। अगर मुझे यह भय न होता कि माताजी मेरी अवज्ञा से रो-रोकर प्राण दे देंगी, और पिताजी देश-विदेश मारे-मारे फिरेंगे, तो मै यह असह्य यातना न सहता। लेकिन मै सब कुछ तुम्हारे ही

फैसले पर छोड़ता हूँ, केवल इतनी ही याचना करता हूँ कि मुझ पर दया करो।'

दोनो पत्रों को डाकघर मे डालते हुए वह मनोरमा को पढ़ाने चले गये।

मनोरमा बोली – आज आप बड़ी जल्दी आ गये ; लेकिन देखिये मै आपको तैयार मिली। मै जानती थी कि आप आ रहे होंगे, सच !

चक्रधर ने मुस्कराकर पूछा—तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं आ रहा हूँ।

मनोरमा—यह न बताऊँगी ; किन्तु मै जान गई थी। अच्छा कहिये आपके विषय मे कुछ और बताऊँ। आज आप किसी-न-किसी बात पर रोये है। बताइये सच है कि नही ?

चक्रधर ने झेंपते हुए कहा—झूठी बात है। मै क्यो रोता, कोई बालक हूँ ?

मनोरमा खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—बाबूजी, कभी-कभी आप बड़ी मौलिक बात कहते है। क्या रोना और हँसना बालको ही के लिए है ? जवान और बूढ़े नही रोते।

चक्रधर पर उदासी छा गई। हँसने की विफल चेष्टा करके बोले—तुम चाहती हो कि मै तुम्हारे दिव्य-ज्ञान की प्रशंसा करूँ। वह मैं न करूँगा।

मनोरमा – अन्याय की बात दूसरी है ; लेकिन आपकी आँखे कहे देती है कि आप रोये हैं ! (हँसकर) अभी आपने वह विद्या नही पढ़ी, जो हँसी को रोने और रोने को हँसी का रूप दे सकती है।

चक्रधर—क्या आजकल तुम उस विद्या का अभ्यास कर रही हो ?

मनोरमा—कर तो नहीं रही हूँ ; पर करना चाहती हूँ।

चक्रधर नहीं मनोरमा, तुम वह विद्या न सीखना। मुलम्मे की ज़रूरत सोने को नहीं होती।

मनोरमा—होती है बाबूजी, होती है। इससे सोने का मूल्य चाहे

न बढ़े ; पर चमक बढ़ जाती है। आपने महारानी की तीर्थ-यात्रा का हाल तो सुना ही होगा। अच्छा बताइये, आप इस रहस्य को समझते हैं ?

चक्रधर—क्या इसमे भी कोई रहस्य है ?

मनोरमा—और नही क्या ! मै परसों रात को बडी देर तक वही थी। हर्षपुर के राजकुमार आये हुए थे। उन्हीं के साथ गई है।

चक्रधर—ख़ैर होगा, तुमने आज क्या काम किया है, लाओ देखूँ।

मनोरमा—एक छोटा-सा लेख लिखा है, पर आपको दिखाते शर्म आती है।

चक्रधर-तुम्हारे लेख बहुत अच्छे होते है। शर्म की क्या बात है ?

मनोरमा ने सकुचाते हुए अपना लेख उनके सामने रख दिया और वहाँ से उठकर चली गई। चक्रधर ने लेख पढ़ा, तो दग रह गये। विषय था ऐश्वर्य से सुख ! वे क्या हैं ? काल पर विजय, लोकमत पर विजय, आत्मा पर विजय। लेख में इन्ही तीनों अगो की विस्तार के साथ व्याख्या की गई थी। चक्रधर उन विचारों की मौलिकता पर मुग्ध तो हुए ; पर इसके साथ ही उन्हें उनकी स्वच्छन्दता पर खेद भी हुआ। ये भाव किसी व्यग्य में तो उपयुक्त हो सकते थे, लेकिन एक विचारपूर्ण निबंध में शोभा न देते थे। उन्होने लेख समाप्त करके रखा ही था कि मनोरमा लौट आई और बोली—हाथ जोडती हूँ बाबूजी, इस लेख के विषय में कुछ न पूछियेगा, मै इसी के भय से चली गई थी।

चक्रधर—पूछना तो बहुत कुछ चाहता था ; लेकिन तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो न पूछूँगा। केवल इतना बता दो कि ये विचार तुम्हारे मन में क्योकर आये ? ऐश्वर्य का सुख विहार और विलास तो नही। यह तो ऐश्वर्य का दुरुपयोग है। यह तो व्यंग्य मालूम होता है।

मनोरमा—आप जो समझिये।

चक्रधर—तुमने क्या समझकर लिखा है ?

मनोरमा—जो कुछ आँखों देखा, वही लिखा।

यह कहकर मनोरमा ने वह लेख उठा लिया और तुरत फाड़कर खिड़की के बाहर फेंक दिया। चक्रधर 'हाँ-हाँ' करते रह गये। जब वह फिर अपनी जगह पर आकर बैठी, तो चक्रधर ने गंभीर स्वर से कहा—तुम्हारे मन में ऐसे कुत्सित विचारों को स्थान पाते देखकर मुझे दुःख होता है।

मनोरमा ने सजल नयन होकर कहा—अब मैं ऐसा लेख कभी न लिखूँगी।

चक्रधर—लिखने की बात नहीं है। तुम्हारे मन में ऐसे भाव आने ही न चाहियें। काल पर हम विजय पाते हैं, अपनी सुकीर्ति से, यश से, व्रत से। परोपकार ही अमरत्व प्रदान करता है। काल पर विजय पाने का अर्थ यह नहीं है कि कृत्रिम साधनों से भोग-विलास में प्रवृत्त हों, वृद्ध होकर जवान बनने का स्वप्न देखें और अपनी आत्मा को धोका दें। लोकमत पर विजय पाने का अर्थ है, अपने सद्विचारों और सत्कर्मों से जनता का आदर और सम्मान प्राप्त करना। आत्मा पर विजय पाने का आशय निर्लज्जता या विषय-वासना नहीं; बल्कि इच्छाओं का दमन करना और कुवृत्तियों को रोकना है। यह मैं नहीं कहता कि तुमने जो कुछ लिखा है वह यथार्थ नहीं है। उनकी नग्न यथार्थता ही ने उन्हें इतना घृणित बना दिया है। यथार्थ का रूप अत्यन्त भयंकर होता है और हम यथार्थ ही को आदर्श मान लें, तो संसार नरक-तुल्य हो जाय। हमारी दृष्टि मन की दुर्बलताओं पर न पड़नी चाहिये; बल्कि दुर्बलताओं में भी सत्य और सुन्दर की खोज करनी चाहिये। दुर्बलताओं की ओर हमारी प्रवृत्ति स्वयं इतनी बलवती है कि उसे उधर ढकेलने की ज़रूरत नहीं। ऐश्वर्य का एक सुख और है, जिसे तुमने न-जाने क्यों छोड़ दिया, जानती हो वह क्या है ?

मनोरमा—अब उसकी और व्याख्या करके मुझे लज्जित न कीजिये।

चक्रधर--तुम्हें लज्जित करने के लिए नहीं तुम्हारा मनोरञ्जन करने के लिए बताता हूँ। वह पुरानी बातों को भूल जाना है। ऐश्वर्य पाते ही हमें अपना पूर्व-जीवन विस्मृत हो जाता है। हम अपने पुराने हमजोलियों को नहीं पहचानते। ऐसा भूल जाते हैं, मानो कभी देखा ही न था। मेरे जितने धनी मित्र थे, वे सब मुझे भूल गये। कभी सलाम करता हूँ तो हाथ तक नहीं उठाते। ऐश्वर्य का यह एक ख़ास लक्षण है। कौन कह सकता है कि कुछ दिनों के बाद तुम्हीं मुझे न भूल जाओगी!

मनोरमा—मैं आपको भूल जाऊँगी! असम्भव है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि पूर्व-जन्म में भी मेरा और आपका किसी न किसी रूप में साथ था। पहले ही दिन से मुझे आपसे इतनी श्रद्धा हो गई, मानो पुराना परिचय हो। मै जब कभी कोई बात सोचती हूँ, तो आप उसमें अवश्य पहुँच जाते हैं। अगर ऐश्वर्य पाकर आपको भूल जाने की सम्भावना हो, तो मैं उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखूँगी।

चक्रधर ने मुस्कराकर कहा जब हृदय यही रहे तब तो!

मनोरमा - यही रहेगा, देख लीजियेगा। मैं मरकर भी आपको नहीं भूल सकती।

इतने में ठाकुर हरिसेवक आकर बैठ गये। आज वह बहुत प्रसन्न चित्त मालूम होते थे। अभी थोडी ही देर पहले राजभवन से लौटकर आये थे। रात को नशा जमाने का अवसर न मिला था, उसकी क़सर इस वक्त पूरी कर ली थी। आँखें चढी हुई थी। चक्रधर से बोले—आपने कल महाराजा साहब के यहाँ उत्सव का प्रबन्ध जितनी सुन्दरता से किया, उसके लिए आपको बधाई देता हूँ। आप न होते, तो सारा खेल बिगड जाता। महाराज साहब बडे ही उदार आदमी है। अब तक मै उनके विषय में कुछ और ही समझे हुए था। कल उनकी उदारता और सज्जनता ने मेरा सशय दूर कर दिया। आप से तो बिलकुल मित्रों का-सा बरताव करते है।

चक्रधर—जी हाँ, अभी तक तो उनके बारे मे कोई शिकायत नहीं है।

हरिसेवक—महाराज को एक प्राइवेट सेक्रेटरी की ज़रूरत तो पड़ेगी ही, आप कोशिश करे, तो आपको अवश्य ही वह जगह मिल जाय। आप घर के आदमी है, आपके हो जाने से बड़ा इतमीनान हो जायगा। एक सेक्रेटरी के बगैर महाराजा साहब का काम नहीं चल सकता। कहिये तो ज़िक्र करूँ ?

चक्रधर—जी नहीं, अभी तो मेरा इरादा कोई स्थायी नौकरी करने का नहीं है, दूसरे मुझे विश्वास भी नहीं है कि मै उस काम को सँभाल सकूँगा।

हरिसेवक—अजी, काम करने से सब आ जाता है और आपकी योग्यता तो मेरे सामने है। मनोरमा को पढाने कितने ही मास्टर आये, कोई दो-चार महीनो से ज्यादा न ठहरा। आप जब से आये है, इसने बहुत ख़ासी तरक्की कर ली है। मै अब तक आपकी तरक्की नहीं कर सका, इसका मुझे खेद है। इस महीने से आपको ५०) महीने मिलेंगे, यद्यपि मै इसे भी आपकी योग्यता और परिश्रम के देखते बहुत कम समझता हूँ।

लौंगी देवी भी आ पहुँची। कही-बदी बात थी। ठाकुर साहब का समर्थन करके बोलीं—देवता-रूप है, देवता रूप। मेरी तो इन्हे देखकर भूख-प्यास बन्द हो जाती है।

हरिसेवक—तो तुम इन्ही को देख लिया करो, खाने का कष्ट न उठाना पड़े।

लौंगी—मेरे ऐसे भाग्य कहाँ। क्यों बेटा, तुम नौकरी क्यो नहीं कर लेते ?

चक्रधर—जितना आप देती है, मेरे लिए उतना ही काफ़ी है।

लौंगी—इसी से शादी-ब्याह नही करते ? अब की लाला (वज्रधर) आते है, तो उनसे कहती हूँ, लड़के को कब तक छूटा रखोगे।

हरिसेवक—शादी यह खुद ही नही करते, वह बेचारे क्या करें। यह स्वाधीन रहना चाहते हैं।

लौंगी— तो कोई रोजगार क्यो नहीं करते बेटा ?

चक्रधर - अभी इस चरखे मे नही पडना चाहता।

हरिसेवक—यह और विचार के आदमी है। माया-फाँस में नहीं पड़ना चाहते।

लौंगी—धन्य है बेटा, धन्य है। तुम सच्चे साधु हो।

इस तरह की बातें करके ठाकुर साहब अन्दर चले गये। लौंगी भी उनके पीछे-पीछे चली गई। मनोरमा सिर झुकाये दोनो प्राणियो की बातें सुन रही थी और किसी शका से उसका दिल कॉप रहा था। किसी आदमी में स्वभाव के विपरीत आचरण देखकर शंका होती ही है। आज दादाजी इतने उदार क्यो हो रहे है। आज तक इन्होंने किसी को पूरा वेतत नही दिया, तरक्की करने का ज़िक्र ही क्या। आज विनय और दया की मूर्ति क्यों बने जाते है ? इसमें अवश्य कोई रहस्य है ? बाबूजी से कोई कपट-लीला तो नहीं करना चाहते, ज़रूर यही बात है। कैसे इन्हें सचेत कर दूँ ?

वह यही सोच रही थी कि गुरुसेवकसिह कन्धे पर बन्दूक रखे शिकारी कपडे पहने एक कमरे से निकल आये और बोले - कहिये महाशय, दादाजी तो आज आपसे बहुत प्रसन्न मालूम होते थे।

चक्रधर ने कहा— यह उनकी कृपा है।

गुरुसेवक—कृपा के धोखे में न रहियेगा। ऐसे कृपालु नहीं है। इनका मारा पानी भी नही मॉगता। इस डाइन ने इन्हें पूरा राक्षस बना दिया है। शर्म भी नही आती। आप से ज़रूर कोई मतलब गॉठना चाहते है।

चक्रधर ने मुसकराकर कहा—लौंगी अम्मॉ से आपका मेल नही हुआ ?

गुरुसेवक—मेल ! मैं उससे मेल करूँगा ! मर जाय, तो कन्धा

तक न दूँ। डाइन है, लङ्का की डाइन, उसके हथकण्डो से बचते रहियेगा। वेतन कभी बाकी न रखियेगा। दादाजी को तो इसने बुद्धू बना छोडा है। दादाजी जब किसी पर सख्ती करते हैं, तो तुरन्त घाव पर मरहम रखने पहुँच जाती है। आदमी धोखे मे आकर समझता है, यह दया और क्षमा की देवी है। वह क्या जाने कि यही आग लगानेवाली भी है और बुझानेवाली भी। इसका चरित्र समझने के लिए मनोविज्ञान के किसी बडे पण्डित की ज़रूरत है।

चक्रधर ने आकाश की ओर देखा, तो घटा घिर आई थी। पानी बरसा ही चाहता था। उठकर बोले—आप इस विद्या मे बहुत कुशल मालूम होते हैं।

जब वह बाहर निकल गये, तो गुरुसेवक ने मनोरमा से पूछा—आज दोनो इन्हें क्या पट्टी पढा रहे थे?

मनोरमा – कोई ख़ास बात तो नहीं थी।

गुरुसेवक—यह महाशय भी बने हुए मालूम होते हैं। सरल जीवनवालो से बहुत घबराता हूँ। जिसे यह राग अलापते देखो समझ जाओ कि या तो उसके लिए अंगूर खट्टे है, या वह स्वांग रचकर कोई बडा शिकार मारना चाहता है।

मनोरमा—बाबूजी उन आदमियो में नही हैं।

गुरुसेवक—तुम क्या जानो। ऐसे गुरुघण्टालों को मै खूब पहचानता हूँ।

मनोरमा—नही भाई साहब, बाबूजी के विषय मे आप धोखा खा रहे है। महाराजा साहब इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाना चाहते है, लेकिन यह मंजूर नहीं करते।

गुरुसेवक—सच! उस जगह का वेतन तो ४-५ सौ से कम न होगा।

मनोरमा – इससे क्या कम होगा। चाहें तो इन्हें अभी वह जगह मिल सकती है। राजा साहब इन्हें बहुत मानते है, लेकिन यह कहते

हैं, मैं स्वाधीन रहना चाहता हूँ। यहाँ भी अपने घरवालों के बहुत दवाने से आते हैं।

गुरुसेवक—मुझे वह जगह मिल जाय, तो वडा मजा आये।

मनोरमा मै तो समझती हूँ, इसका दुगुना वेतन मिले, तो भी बाबूजी स्वीकार न करेंगे। सोचिये, कितना ऊँचा आदर्श है।

गुरुसेवक—मुझे किसी तरह वह जगह मिल जाती, तो जिन्दगी वडे चैन से कटती।

मनोरमा – अब गांवो का सुधार न कीजियेगा ?

गुरुसेवक—वह भी करता रहूँगा, यह भी करता रहूँगा। राज-मन्त्री होकर प्रजा की सेवा करने का जितना अवसर मिल सकता है, उतना स्वाधीन रहकर नहीं। कोशिश करके देखूँ, इसमे तो कोई बुराई नही है।

यह कहते हुए वह अपने कमरे में चले गये।

मेघो का दल उमडा चला आता था। मनोरमा खिडकी के सामने खडी आकाश की ओर भयातुर नेत्रों से देख रही थी। अभी बाबूजी घर न पहुँचे होंगे। पानी आ गया, तो ज़रूर भीग जायँगे। मुझे चाहिये था कि उन्हें रोक लेती। भैया न आ जाते, तो शायद वह अभी खुद ही बैठते। ईश्वर करे, वह घर पहुँच गये हो।

१३

मुद्दत के वाद जगदीशपुर के भाग्य जगे। राजभवन आबाद हुआ वरसात में मकानों की मरम्मत न हो सकती थी, इसलिए क्वार तक शहर ही मे गुजर करना पडा। कार्तिक लगते ही एक ओर जगदीशपुर के राजभवन की मरम्मत होने लगी, दूसरी ओर गद्दी के उत्सव की

तैयारियाँ शुरू हुईं। शहर से सामान लद-लदकर जगदीशपुर जाने लगा। राजा साहब स्वयं एक बार रोज़ जगदीशपुर जाते, लेकिन रहते शहर मे ही। रानियाँ जगदीशपुर चली गई थी और राजा साहब को अब उनसे चिढ़-सी हो गई थी। घंटे-दो-घंटे के लिए भी वहाँ जाते, तो सारा समय गृह-कलह सुनने मे कट जाता था और कोई काम देखने की मुहलत ही न मिलती थी। रानियो मे पहले ही बम-चख मची रहती थी, राजा साहब ने जीवन का नया अध्याय शुरू कर दिया था।

राजा साहब ताकीद करते रहते थे कि प्रजा पर जरा भी सख़्ती न होने पाये। दीवान साहब से उन्होने जोर देकर कह दिया था कि बिना पूरी मजदूरी दिये किसी से काम न लीजिये, लेकिन यह उनकी शक्ति से बाहर था कि आठो पहर वहाँ बैठे रहें। उनके पास अगर कोई शिकायत पहुँचती, तो कदाचित् वह राज-कर्मचारियो को फाड खाते, लेकिन प्रजा सहनशील होती है, जब तक प्याला भर न जाय, वह ज़बान नही खोलती। फिर गद्दी के उत्सव मे थोडा-बहुत कष्ट होना स्वाभाविक समझकर और भी कोई न बोलता था। अपना काम तो बारहो मास करते ही हैं, मालिक की भी तो कुछ सेवा होना चाहिये। यह ख़याल करके सभी लोग उत्सव की तैयारियो मे लगे हुए थे। सुन रखा था कि राजा साहब बडे दयालु, प्रजा-वत्सल पुरुष हैं, इससे लोग खुशी से इस अवसर पर योग दे रहे थे। समझते थे, महीने-दो-महीने का झंझट है, फिर तो चैन-ही-चैन है रानी साहब के समय की-सी धाँधली तो इनके समय में न होगी।

तीन महीने तक सारी रियासत के बढई, लोहार, मिस्त्री, दरजी, चमार, कहार सब दिल तोडकर काम करते रहे। चक्रधर को रोज़ खबरें मिलती रहती थी कि प्रजा पर बडे-बडे अत्याचार हो रहे हैं, लेकिन वह राजा साहब से शिकायत करके उन्हें असमंजस मे न डालना चाहते थे। अकसर खुद जाकर मजूरो और कारीगरो को समझाते थे।

१५ ही मील का तो रास्ता था। रेलगाड़ी आध घण्टे में पहुँचा देती थी। इस तरह तीन महीने गुजर गये। राजभवन का कलेवर नया हो गया। सारे कसबे में रोशनी के फाटक बन गये, तिलकोत्सव का विशाल पंडाल तैयार हो गया। चारों तरफ भवन में, पंडाल में, कस्बे में, सफाई और सजावट नज़र आती थी। कर्मचारियों को नई वरदियां बनवा दी गई। प्रांत-भर के रईसों, राजाओं के नाम निमन्त्रण पत्र भेज दिये गये और रसद का सामान जमा होने लगा। वसंत की ऋतु थी, चारों तरफ वसन्ती रङ्ग की बहार नजर आती थी। राजभवन वसन्ती रङ्ग से पोताया गया था। पंडाल भी वसन्ती था। मेहमानों के लिए जो कैंप बनाये गये थे, वे भी वसन्ती थे। कर्मचारियों की वरदियाँ भी वसन्ती। दो मील के घेरे में वसन्त-ही-वसन्त था। सूर्य के प्रकाश से सारा दृश्य कंचनमय हो जाता था। ऐसा मालूम होता था, मानो स्वयं ऋतुराज के अभिषेक की तैयारियां हो रही हैं।

लेकिन अब तक बहुत कुछ काम बेगार से चल गया था। मजूरों को भोजन-मात्र मिल जाता था। अब नकद रुपए की जरूरत सामने आ रही थी। राजाओं का आदर-सत्कार और अंगरेज़ हुक्काम की दावत तवाजा तो बेगार में न हो सकती थी। कलकत्ते से थियेटर की कंपनी बुलाई गई थी, मथुरा की रास-लीला-मण्डली को नेवता दिया गया था। खर्च का तखमीना पांच लाख से ऊपर था। प्रश्न था, ये रुपए कहां से आये। खज़ाने में फाँझी कौड़ी न थी! असामियों से छमाही लगान पहले ही वसूल किया जा चुका था। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। मुहूर्त आता जाता था और कुछ निश्चय न होता था। यहाँ तक कि केवल १५ दिन रह गये।

सन्ध्या का समय था। राजा साहब उस्ताद मेंडूखाँ के साथ बैठे सितार का अभ्यास कर रहे थे। राज्य पाकर उन्होंने अब तक केवल यही एक व्यसन पाला था। वह कोई नई बात करते हुए डरते रहते थे कि कहीं लोग यह न कहने लगें कि ऐश्वर्य पाकर मतवाला हो गया,

अपने को भूल गया। वह छोटे-बडे सभी से बडी नम्रता से बोलते थे और यथाशक्ति किसी टहलू पर भी न बिगडते थे। मेंढूखाँ इस वक्त उन्हें डाट रहे थे—सितार बजाना कोई मुँह का नेवाला नहीं है—कि दीवान साहब और मुंशीजी आकर खडे हो गये।

विशालसिंह ने पूछा—कोई ज़रूरी काम है?

ठाकुर—ज़रूरी न होता, तो हुजूर को इस वक्त क्यों कष्ट देने आता?

मुंशी—दीवान साहब तो आते हिचकते थे। मैंने कहा, इन्तज़ाम की बात में कैसी हिचक। चलकर साफ़-साफ़ कहिये। तब डरते-डरते आये है।

ठाकुर—हुजूर, उत्सव को अब केवल एक सप्ताह रह गया है और अभी तक रुपए की कोई सबील नहीं हो सकी। अगर आज्ञा हो तो किसी बैंक से ५ लाख कर्ज़ ले लिया जाय।

राजा—हरगिज़ नही। आपको याद है तहसीलदार साहब मैंने आपसे क्या कहा था? मैंने उस वक्त क़र्ज़ नहीं लिया, जब कौड़ी-कौड़ी का मुहताज था। कर्ज़ का आप ज़िक्र ही न करें।

मुंशी—हुजूर, कर्ज़ और फर्ज़ के रूप मे तो केवल ज़रा-सा अन्तर है; पर अर्थ मे ज़मीन और आसमान का फर्क है।

दीवान—तो अब महाराज क्या हुक्म देते हैं?

राजा—ये हीरे-जवाहरात ढेरों पड हुए हैं। क्यों न इन्हें निकाल डालिये? किसी जौहरी को बुलाकर उनके दाम लगवाइये।

दीवान—महाराज, इसमें तो रियासत की बदनामी है।

मुंशी—घर के ज़ेवर ही तो आबरू हैं। वे घर से गये और आबरू गई।

राजा—हाँ, बदनामी तो ज़रूर है; लेकिन दूसरा उपाय ही क्या है?

दीवान—मेरी तो राय है कि असामियो पर हल पीछे १०) चन्दा लगा दिया जाय।

राजा—मै अपने तिलकोत्सव के लिए असामियो पर जुल्म न

करूँगा। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि उत्सव ही न हो।

दीवान—महाराज, रियासतों में पुरानी प्रथा है। सब असामी खुशी से देंगे, किसी को आपत्ति न होगी।

मुंशी—गाते-बजाते आयेंगे और दे जायेंगे।

राजा—मैं किस मुँह से उनसे ये रुपए लूँ? गद्दी पर मैं बैठ रहा हूँ, मेरे उत्सव के लिए असामी क्यों इतना जब्र सहें?

दीवान—महाराज, यह तो परस्पर का व्यवहार है। रियासत भी तो अवसर पड़ने पर हर तरह से असामियों की सहायता करती है। शादी-गमी में रियासत से लकड़ियाँ मिलती हैं, सरकारी चरावर में लोगों की गौएँ चरती हैं। और भी कितनी बातें हैं। जब रियासत को अपना नुकसान उठाकर प्रजा की मदद करनी पड़ती है, तो प्रजा राजा की शादी-गमी में क्यों न शरीक हो?

राजा—अधिकांश असामी ग़रीब हैं, उन्हें कष्ट होगा?

मुंशी—हुजूर असामियों को जितना गरीब समझते हैं, उतने ग़रीब नहीं हैं। एक-एक आदमी लड़कों-लड़कियों की शादी में हज़ारों उड़ा देता है। दस रुपए की रकम इतनी ज्यादा नहीं कि किसी को अखर सके। मेरा तो पुराना तजरबा है। तहसीलदार था, तो हाकिमों को डाली देने के लिए बात की बात में हज़ारों रुपए वसूल कर लेता था।

राजा—मैं असामियों को किसी हालत में कष्ट नहीं देना चाहता। इससे तो कहीं अच्छी बात होगी कि उत्सव को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया जाय, लेकिन अगर आप लोगों का विचार है कि किसी को कष्ट न होगा और लोग खुशी से मदद देंगे, तो आप अपनी ज़िम्मेदारी पर वह काम कर सकते हैं। मेरे कानों तक कोई शिकायत न आये।

दीवान—हुजूर, शिकायत तो थोड़ी-बहुत हर हालत में होती है। इससे बचना असम्भव है। अगर और कोई शिकायत न होगी, तो यही होगी कि महाराजा साहब की गद्दी हो गई और हमारा मुँह भी न

मीठा हुआ, कोई जलसा तक न हुआ। अगर किसी से कुछ न लीजिये, केवल तिलकोत्सव में शरीक होने के लिए बुलाइये, तब भी लोग शिकायत से बाज़ न आयेंगे। नेवते को तलबी समझेंगे और रोयेंगे कि हम अपने काम-धंधे छोड़कर कैसे जायँ। रोना तो उनकी घुट्टी में पड़ गया है। रियासत का कोई नौकर जा पड़ता है, तो उसे उपले तक नहीं मिलते, और कोई धूर्त जटा बढ़ाकर पहुँच जाता है, तो महीनों उसका आदर-सत्कार होता है। राजा और प्रजा का सम्बन्ध ही ऐसा है। प्रजा-हित के लिए भी कोई काम कीजिये, तो उसमें भी लोगों को शंका होती है। हल पीछे १०) बैठा देने से कोई ५ लाख रुपये हाथ आ जायेंगे। रही रसद, वह तो बेगार में मिलती ही है। आपकी अनुमति की देर है।

मुंशी—जब सरकार ने कह दिया कि आप अपनी ज़िम्मेदारी पर वसूल कर सकते हैं, तो अनुमति का क्या प्रश्न? इसका मतलब तो इतना गहरा नहीं है कि बहुत डूबने से मिले। आप महाजनों को देखते हैं, मालिक मुनीम को लिखता है कि फलां काम के लिए रुपए दे दो, मुनीम हीले हवाले करके टाल देता है। हमारी अँगरेजी सरकार ही को देखिये। ऊपरवाले हुक्काम कितनी मुलायमत से बातें करते हैं; लेकिन उनके मातहत खूब जानते हैं कि किसके साथ कैसा बरताव करना चाहिये। चलिये, अब हुज़ूर को तकलीफ़ न दीजिये। मेडूखाँ, बस यही समझ लो कि निहाल हो जाओगे।

राजा—बस, इतना खयाल रखिये कि किसी को कष्ट न होने पाये। आपको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि असामी लोग सहर्ष आकर शरीक हों।

मुंशी—हुज़ूर का फरमाना बहुत वाजिब है। अगर हुज़ूर सख्ती करने लगेंगे, तो उन ग़रीबों के आँसू कौन पोंछेगा। उन्हें तसकीन कौन देगा। हुकूमत करने के लिए तो आपके गुलाम हम हैं। सूरज जलता भी है, रोशनी भी देता है। जलानेवाले हम हैं, रोशनी देनेवाले आप

हैं। दुआ का हक आपका है, गालियों का हक हमारा। चलिये, दीवान साहब, अब हुजूर को सितार से शौक करने दीजिये।'

दोनों आदमी यहाँ से चले, तो दीवान साहब ने कहा—ऐसा न हो, शोर-गुल मचे तो हमारी जान आफत में फँसे?

मुंशीजी बोले—यह सब बगला-भगतपन है। मैं तो रुख पहचानता हूँ। गरीबों का तो जिक्र ही क्या, हमें कभी एक पैसे का नुकसान हो जाता है, तो कितना बुरा मालूम होता है। जिससे आप १०) ऐंठ लेंगे, क्या वह खुशी से दे देगा? इसका मतलब यही है कि धडल्ले से रुपए की वसूली कीजिये। किसी राजा ने आज तक न कहा होगा कि प्रजा को सताकर रुपए वसूल कीजिये। लेकिन चन्दे जब वसूल होने लगे और शोर मचा, तो किसी ने कर्मचारियों की तम्बीह नहीं की। यही हमेशा से होता आता है और यही अब भी हो रहा है।

हुक्म मिलने की देर थी। कर्मचारियों के हाथ तो खुजला रहे थे। वसूली का हुक्म पाते ही बाग-बाग हो गये। फिर तो वह अन्धेर मचा कि सारे इलाके में कुहराम पड गया। असामियों ने नये राजा साहब से दूसरी ही आशाएँ बाँध रखी थीं। यह बला सिर पड़ी, तो झल्ला गये। यहाँ तक कि कर्मचारियों के अत्याचार देखकर चक्रधर का खून भी उबल पडा। समझ गये कि राजा साहब भी कर्मचारियों के पंजे में आ गये। उनसे कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। चारों तरफ लूट-खसोट हो रही थी। गालियाँ और ठोक-पीट तो साधारण बात थी, किसी के बैल खोल लिये जाते थे, किसी की गाय छीन ली जाती थी, कितनों ही के खेत कटवा लिये गये। बेदखली और इज़ाफे की धमकियाँ दी जाती थीं। जिसने खुशी से दिये, उसका तो १०) ही में गला छूट गया। जिसने हीले-हवाले किये, कानून बघारा, उसे १०) के बदले २०), ३०), ४०) देने पडे। आखिर विवश होकर एक दिन चक्रधर ने राजा साहब से शिकायत कर ही दी।

राजा साहब ने त्योरी बदलकर कहा—मेरे पास तो आज तक कोई

असामी शिकायत करने नहीं आया। जब उनको कोई शिकायत नही है, तो आप उनकी तरफ से क्यो वकालत कर रहे है ?

चक्रधर—आपको असामियो का स्वभाव तो मालूम होगा ? उन्हें आपसे शिकायत करने का क्योकर साहस हो सकता है।

राजा—यह मै नहीं मानता। असामी ऐसे बेसींग की गाय नहीं होते। जिसको किसी बात की अखर होती है, वह चुप नहीं बैठा रहता। उसका चुप रहना ही इस बात का प्रमाण है कि उसे अखर नहीं, या है तो बहुत कम। आपके पिताजी और दीवान साहब, यही दो आदमी करता-धरता है, आप उनसे क्यों नही कहते ?

चक्रधर—तो आपसे कोई आशा न रखूँ ?

राजा—मै अपने कर्मचारियो से अलग कुछ नहीं हूँ।

चक्रधर ने इसका और कुछ जवाब न दिया। दीवान साहब या मुंशीजी से इस मामले मे सहायता की याचना करना अंधे के आगे रोना था। क्रोध तो ऐसा आया कि इसी वक्त जगदीशपुर चलूँ और सारे आदमियो से कह दूँ, अपने घर जाओ ! देखूँ लोग क्या करते है। समिति के सेवको के साथ रियासत में दौरा करना शुरू करूँ, फिर देखूँ लोग कैसे रुपए वसूल करते है ; पर राजा साहब की बदनामी का ख़याल करके रुक गये। अभी राजभवन ही मे थे कि मुंशीजी अपना पुराना, तहसीलदारी के दिनो का ओवर-कोट डाटे, मोटरकार से उतरे और इन्हें देखकर बोले—तुम यहाँ क्या करने आये थे। अपने लिए कुछ नही कहा ?

चक्रधर—अपने लिए क्या कहता ? सुनता हूँ रियासत मे बडा अन्धेर मचा हुआ है।

वज्रधर—यह सब तुम्हारे आदमियों की शरारत है। तुम्हारी समिति के आदमी जा-जाकर असामियो को भडकाते रहते हैं। इन्हीं लोगों की शह पाकर वे सब शेर हो गये हैं, नहीं तो किसी की मजाल न थी कि चूँ करता। न-जाने तुम्हारी अक्ल कहाँ गई है ?

चक्रधर—हम लोग तो केवल इतना चाहते हैं कि असामियों पर सख़्ती न की जाय और आप लोगों ने इसका वादा भी किया था, फिर यह मार-धाड क्यों हो रही है ?

वज्रधर—इसीलिए कि असामियों से कह दिया गया है कि राजा साहब किसी पर जब्र नहीं करना चाहते । जिसकी खुशी हो दे, जिसकी खुशी हो न दे । तुम अपने आदमियों को बुला लो, फिर देखो, कितनी आसानी से काम हो जाता है । नशे का जोश ताकत नहीं है । ताकत वह है, जो अपने बदन में हो । जब तक प्रजा खुद न सँभलेगी, कोई उसकी रक्षा नही कर सकता । तुम कहाँ-कहाँ उन पर हाथ रखते फिरोगे ? चौकीदार से लेकर बडे से बडे हाकिम तक सभी उनके दुश्मन हैं । मान लो, हमने छोड दिया ; मगर थानेदार है, पटवारी है, कानूनगो है, माल के हुक्काम हैं । सभी तो उनकी जान के गाहक हैं । तुम फकीर बन जाओ, सारी दुनिया तो तुम्हारे लिए संन्यास न ले लेगी ? तुम आज ही अपने आदमियों को बुला लो । अब तक तो हम लोग उनका लिहाज़ करते आये है ; लेकिन रियासत के सिपाही उनसे बेतरह बिगडे हुए हैं । ऐसा न हो, मार-पीट हो जाय ।

चक्रधर यहा से अपने आदमियो को बुला लेने का वादा करके तो चले , लेकिन दिल मे आग-पीछ हो रही थी । कुछ समझ में न आता कि क्या करना चाहिये । इसी सोच मे पडे हुए मनोरमा के यहाँ चले गये ।

मनोरमा उन्हें उदास देखकर बोली – आप बहुत चिन्तित-से मालूम होते हैं ? घर में तो सब कुशल है ?

चक्रधर—हाँ, कोई बात नही । लाओ देखूँ, तुमने क्या काम किया है ?

मनोरमा – आप मुझसे छिपा रहे हैं । आप जब तक न बतायेंगे, मैं कुछ न पढ़ूँगी । आप तो यों कभी मुरझाये न रहते थे ।

चक्रधर—क्या करूँ मनोरमा, अपनी दशा देखकर कभी-कभी रोना आ जाता है । सारा देश गुलामी की बेडियों में जकडा हुआ है,

फिर भी हम अपने भाइयो की गरदन पर छुरी फेरने से बाज़ नहीं आते। इतनी दुर्दशा पर भी हमारी आंखें नही खुलती। जिनसे लड़ना चाहिये, उनके तो तलुए चाटते है और जिनसे गले मिलना चाहिये, उनकी गरदन दबाते है। और यह सारा जुल्म हमारे पढे-लिखे भाई ही कर रहे है। जिसे कोई अख़्तियार मिल गया, वह फ़ौरन् दूसरो को पीसकर पी जाने की फ़िक्र करने लगता है। विद्या ही से विवेक होता है ; पर जब रोगी असाध्य हो जाता है, तो दवा भी उस पर विष का काम करती है। हमारी शिक्षा ने हमे पशु बना दिया है। राजा साहब की ज़ात से लोगो को कैसी-कैसी आशाएँ थी, लेकिन अभी गद्दी पर बैठे छः महीने भी नही हुए और इन्होने भी वही पुराना ढंग अख्तियार कर लिया। प्रजा से डंडों के जोर से रुपए वसूल किये जा रहे है और कोई फ़रियाद नहीं सुनता। सबसे ज़्यादा रोना तो इस बात का है कि दीवान साहब और मेरे पिताजी ही राजा साहब के मंत्री और इस अत्याचार के मुख्य कारण है।

सरल हृदय प्राणी अन्याय की बात सुनकर उत्तेजित हो जाते है। मनोरमा ने उद्दण्ड होकर कहा—आप असामियो से क्यो नही कहते कि किसी को एक कौड़ी भी न दें। कोई देगा ही नहीं, तो ये लोग कैसे ले लेंगे?

चक्रधर को हँसी आ गई। बोले—तुम मेरी जगह होती, तो असामियो को मना कर देतीं?

मनोरमा—अवश्य। खुलम-खुल्ला कहती, खबरदार! राजा के आदमियो को कोई एक पैसा भी न दे। मै तो राजा के आदमियो को इतना पिटवाती कि फिर इलाके मे जाने का नाम ही न लेते।

चक्रधर ने फिर हँसकर कहा—और दीवान साहब से क्या कहती?

मनोरमा—उनसे भी यही कहती कि आप चुपके से घर चले जाइये, नही तो अच्छा न होगा। आप मेरे पूज्य पिता है, मै आपकी सेवा करूँगी ; लेकिन आपको दूसरो का खून न चूसने दूँगी। ग़रीबों

को सताकर अपना घर भर लिया, तो कौन-सा बड़ा तीर मार लिया। वीर तो जब बखानूँ, जब सबलों से ताल ठोकिये। अभी एक गोरा आ जाय, तो घर में दुम दबाकर भागेंगे। उस वक्त ज़बान भी न खुलेगी। उससे जरा आँखें मिलाइये तो देखिये, ठोकर जमाता है या नहीं। उनसे तो बोलने की हिम्मत नहीं। बेचारे दीनों को सताते फिरते हैं। यह तो मरे को मारना हुआ। इसे हुकूमत नहीं कहते। यह चोरी भी नहीं है। यह केवल मुरदे और गिद्ध का तमाशा है।

चक्रधर ये बातें सुनकर पुलकित हो उठे। मुस्कराकर बोले—अगर दीवान साहब ख़फ़ा हो जाते?

मनोरमा—तो ख़फ़ा हो जाते! किसी के ख़फ़ा हो जाने के डर से सच्ची बात पर परदा थोड़ा ही डाला जाता है। अगर आज वह आ गये, तो मैं आज ही ज़िक्र करूँगी।

यह कहते-कहते मनोरमा कुछ चिन्तित-सी हो गई और चक्रधर भी विचार में पड़ गये। दोनों के मन में एक ही भाव उठ रहे थे—इसका फल क्या होगा? वह सोचती थी, कहीं लालाजी ने गुस्से में आकर बाबूजी को अलग कर दिया तो? चक्रधर सोच रहे थे, यह शङ्का मुझे क्यों इतना भयभीत कर रही है! इस विषय पर फिर कुछ बात-चीत न हुई; लेकिन चक्रधर यहाँ से पढ़ाकर चले, तो उनके मन में प्रश्न हो रहा था—क्या अब यहाँ मेरा आना उचित है? आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अन्तस्तल को देखा, तो उसमें कितने ही ऐसे भाव छिपे हुए थे, जिन्हें यहाँ न रहना चाहिये था! रोग जब तक कष्ट न देने लगे हम उसकी परवा नहीं करते। बालक की गालियाँ हँसी में उड़ जाती हैं, लेकिन सयाने लड़के की गालियाँ कौन सहेगा?

गद्दी के कई दिन पहले ही से मेहमानो का आना शुरू हो गया और तीन दिन बाकी ही थे कि सारा कैम्प भर गया। दीवान साहब ने कैम्प ही में बाज़ार लगवा दिया था, वहीं रसद-पानी का भी इंतजाम था। राजा साहब स्वयं मेहमानो की ख़ातिरदारी करते रहते थे; किन्तु जमघट बहुत बडा था। आठो पहर हरबोग-सा मचा रहता था।

बडे-बडे नरेश आये थे। कोई चुने हुए दरबारियो के साथ, कोई लाव लश्कर लिये हुए। कही ऊदी बरदियो की बहार थी, तो कहीं केसरिये बाने की। कोई रत्न-जटित आभूषण पहने, कोई अँगरेजी सूट से लैस; कोई इतना विद्वान् कि विद्वानों में शिरोमणि, कोई इतना मूर्ख कि मूर्ख मंडली की शोभा! कोई पांच घंटे स्नान करता था और कोई सात घंटे पूजा। कोई दो बजे रात को सोकर उठता था, कोई दो बजे दिन को। रात-दिन तबले ठनकते रहते थे। कितने ही महाशय ऐसे भी थे, जिनका दिन अँगरेज़ी कैम्प का चक्कर लगाने ही मे कटता था। दो-चार सज्जन प्रजावादी भी थे। चक्रधर और उनकी टुकडी के और लोग इन लोगो की सेवा-सम्मान विशेष रूप से करते थे, किन्तु विद्वान् या मूर्ख, राजसत्ता के स्तम्भ या लोकसत्ता के भक्त, सभी अपने को ईश्वर का अवतार समझते थे, सभी ग़रूर के नशे मे मतवाले, सभी विलासिता मे डूबे हुए, एक भी साधु नहीं, एक भी ऐसा नहीं, जिसमे चरित्रबल हो, सिद्धान्त-प्रेम हो, मर्यादा-भक्ति हो।

नरेशो की सम्मान-लालसा पग-पग पर अपना जलवा दिखाती थी। वह मेरे आगे क्यो चले, उन्हें मेरे पीछे रहना चाहिये था। उनका पूर्वज हमारे हमारे पुरखाओ का कर दाता था। बातें करने मे, अभि-वादन मे, भोजन करने के लिए बैठने मे, महफिल मे, पान और इलायची लेने में, यही अनैक्य और द्वेष का भाव प्रकट होता रहता था। राजा विशालसिंह और और कर्मचारियो का बहुत-सा समय

चिरौरी-विनती करने में कट जाता था। कभी-कभी तो इन महान् पुरुषों को शान्त करने के लिए राजा साहब को हाथ जोडना और उनके पैरों पर सिर रखना पडता था। दिल में पछताते थे कि व्यर्थ ही यह आडम्बर रचा। भगवान् किसी भाँति कुशल से यह उत्सव समाप्त कर दें, अब कान पकडे कि ऐसी भूल कभी न होगी! किसी अनिष्ट की शंका उन्हें हरदम उद्विग्न रखती थी। मेहमानों से तो कॉपते रहते थे; पर अपने आदमियों से ज़रा-जरा-सी बात पर बिगड जाते थे, जो कुछ मुँह मे आता, बक डालते थे!

अगर शान्ति थी तो अँगरेजी कैम्प मे। न नौकरों की तकरार थी, न बाज़ारवालों से जूती-पैज़ार थी। सबकी चाय का एक समय, डिनर का एक समय, विश्राम का एक समय, मनोरंजन का एक समय। सब एक साथ खेलते, एक साथ थिएटर देखते, एक साथ हवा खाने जाते। न बाहर गन्दगी थी, न मन मे मलिनता। नरेशों के कैम्प में पराधीनता का राज्य था। अँगरेज़ी कैम्प मे स्वाधीनता का। स्वाधीनता सद्गुणों को जगाती है, पराधीनता दुर्गुणों को।

उधर रनिवास मे भी खूब जमघट था! महिलाओं का रंग-रूप देखकर आँखों में चकाचौंध हो जाती थी। रत्न और कञ्चन ने उनकी कान्ति को और भी अलंकृत कर दिया था। कोई पारसी वेश मे थी, कोई अँगरेज़ी वेश में और कोई अपने ठेठ स्वदेशी ठाट मे। युवतियाँ इधर-उधर चहकती फिरती थीं, प्रौढाएँ आँखें मटका रही थी। वासना उम्र के साथ बढती जाती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आँखो के सामने था। अँगरेज़ी फैशनवालियां औरों को गॅवारिनें समझती थी; और गॅवारिनें उन्हें कुलटा कहती थी। मज़ा यह था कि सभी महिलाएँ ये बातें अपनी महरियों और लौडियों से कहने में भी संकोच न करती थीं। ऐसा मालूम होता था कि ईश्वर ने स्त्रियों को निंदा और परिहास के लिए ही रचा है। मन और तन में कितना अन्तर हो सकता है, इसका कुछ अनुमान हो जाता था। मनोरमा को महिलाओं की सेवा-सत्कार

का भार सौपा गया था ; किन्तु उसे यह चरित्र देखने मे विशेष आनंद आता था। उसे उनके पास बैठने मे घृणा होती थी। हाँ, जब रानी रामप्रिया को बैठे देखती ; तो उनके पास जा बैठती। इतने काँच के टुकडों में उसे वही एक रत्न नज़र आता था।

मेहमानों के आदर-सत्कार की तो यह धूम थी। और वे मज़दूर, जो छाती फाड-फाडकर काम कर रहे थे, भूखो मरते थे। कोई उनकी ख़बर न लेता था। काम लेने को सब थे, भोजन को पूछनेवाला कोई न था। चमार पहर रात रहे घास छीलने जाते, मेहतर पहर रात से सफाई करने लगते, कहार पहर रात से पानी खींचना शुरू करते, मगर कोई उनका पुरसाहाल न था। चपरासी बात-बात पर उन्हें गालियां सुनाते ; क्योकि उन्हें खुद बात-बात पर डाट पडती थी। चपरासी सहते थे ; क्योकि उन्हें दूसरो पर अपना गुस्सा उतारने का मौका मिल जाता था। बेगारो से न सहा जाता था, इसीलिए कि उनकी आंतें जलती थी। दिन-भर धूप से जलते, रात-भर क्षुधा की आग मे। रानी के समय मे बेगार इससे भी ज़्यादा ली जाती थी ; लेकिन रानी को स्वयं उन्हें खिलाने-पिलाने का ख़याल रहता था। बेचारे अब उन दिनों को याद कर-करके रोते थे। क्या सोचे थे, क्या हुआ ? असंतोष बढता जाता था। न-जाने कब सब-के-सब जान पर खेल जायें, हडताल कर दे, न-जाने कब बारूद मे चिनगारी पड जाय। दशा ऐसी ही भयंकर हो गई थी। राजा साहब को नरेशो ही की खातिरदारी से फुरसत न मिलती थी, यह सत्य है ; किन्तु राजा के लिए ऐसे बहाने शोभा नही देते। उसकी निगाह चारों तरफ दौडनी चाहिये। अगर उसमे इतनी योग्यता नही, तो उसे राज्य करने का कोई अधिकार नही।

संध्या का समय था। चारो तरफ चहल-पहल मची हुई थी। तिलक का मुहूर्त निकट आ गया था। हवन की तैयारी हो रही थी। सिपाहियो को वरदी पहनकर खडे हो जाने की आज्ञा दे दी गई थी, कि सहसा मज़दूरो के बाडे से रोने-चिल्लाने की आवाज़ें आने लगीं।

किसी कैम्प में घास न थी और ठाकुर हरिसेवक हंटर लिये हुए चमारं को पीट रहे थे। मुंशी वज्रधर की आँखें मारे क्रोध के लाल हो रही थी। कितना अनर्थ है! सारा दिन गुज़र गया और अभी तक किसी कैम्प से घास नहीं पहुँची! चमारो का यह हौसला! ऐसे बदमाशों को गोली मार देनी चाहिये!

एक चमार बोला मालिक, आपको अख्तियार है। मार डालिये मुदा पेट बांधकर काम नही होता!

चौधरी ने हाथ बांधकर कहा—हुजूर, घास तो रात ही को पहुँचा दी गई थी, मैं आप जा के रखवा आया था। हाँ, इस बेला अभी नही पहुँची। आधे आदमी तो मांदे पडे हुए हैं। क्या करूँ?

मुन्शी—बदमाश! झूठ बोलता है, सुअर, डैमफूल, ब्लाडी, रैस्केल, शैतान का बच्चा, अभी पोलो खेल होगा, घोडे बिना खाये कैसे दौडेंगे?

एक युवक ने कहा—हम लोग तो बिना खाये आठ दिन से घास दे रहे हैं, घोडे क्या बिना खाये एक दिन भी न दौडेंगे? क्या हम घोडों से भी गये-गुजरे हैं?

चौधरी डंडा लेकर युवक को मारने दौडा, पर उसके पहले ही ठाकुर साहब ने झपटकर उसे चार-पाँच हंटर सडाप-सडाप लगा दिये। नंगी देह, चमडा कट गया, खून निकल आया।

चौधरी ने ठाकुर साहब और युवक के बीच में खडे होकर कहा—हुजूर, क्या मार ही डालोगे? लडका है, कुछ अनुचित मुँह से निकल जाय, तो क्षमा करनी चाहिये। राजा को दयावान होना चाहिये।

ठाकुर साहब आपे से बाहर हो रहे थे। एक चमार का यह हौसला कि उनके सामने मुँह खोल सके। वही हंटर तानकर चौधरी को जमाया। बूढ़ा आदमी, उस पर कई दिन का भूखा, खडा भी मुश्किल से हो सकता था। हंटर पडते ही जमीन पर गिर पडा। बाडे मे हलचल पड गई। हजारो आदमी जमा हो गये। कितने ही चमारो ने मारे डर

के खुरपी और रस्सी उठा ली थी और घास छीलने जा रहे थे। चौधरी पर हंटर पडते देखा, तो रस्सी-खुरपी फेंक दी और आकर चौधरी को उठाने लगे।

ठाकुर साहब ने तडपकर कहा—तुम सब अभी एक घंटे में घास लाओ, नहीं तो एक-एक की हड्डी तोड दी जायगी।

एक चमार बोला—हम यहाँ काम करने आये हैं, जान देने नहीं आये हैं। एक तो भूखों मरें, दूसरे लात खायें। हमारा जनम इसीलिए थोडे ही हुआ है? जिससे चाहें काम कराइये, हम घर जाते हैं?

ठाकुर साहब फिर हंटर फटकारकर बोले—कहाँ भागकर जाओगे? गांव में घुसने भी न पाओगे। क्या सरकारी काम को हँसी-खेल समझ लिया है?

चमार—सरकार अपना गांव ले लें, हम छोडकर चले जायेंगे।

ठाकुर—खेत छीन लिये जायेंगे। घर गिरा दिये जायेंगे। इस फेर में मत रहना!

चमार—आपको अखितयार है, जो चाहें करें। हमें अब इस राज्य में नहीं रहना है। कुछ हाथ-पांव थोडे ही कटाये बैठे हैं। अगर कहीं ठिकाना न लगेगा, तो मिरिच-डमरा तो है ही।

मुंशी—जिसने बाडे के बाहर कदम रखा, उसकी शामत आई। तोप पर उडा दूंगा।

लेकिन चमारों के सिर भूत सवार था। बूढे चौधरी को उठाकर सब-के-सब एक गोल में बाडे के द्वार की ओर चले। सिपाहियों की क़वायद हो रही थी। ठाकुर साहब ने खबर भेजी और बात की बात में उन सबों ने आकर बाडे का द्वार रोक लिया। सभी कैम्पों में खल-बली पड गई। तरह-तरह की अफवाहें उडने लगीं। किसी ने कहा—चमारों ने दीवान साहब को मार डाला। किसी ने उडाया—सिपाहियों ने गोली चला दी और पच्चीस चमार जान से मारे गये? चारों तरफ़ से दौड-दौडकर लोग तमाशा देखने आने लगे। बाड़े का द्वार

भेडों के वाडे का द्वार बना हुआ था। भीतर भेडें थीं घबराई हुई, बाहर कुत्ते थे झल्लाये हुए। भेडें लडना नहीं जानतीं; पर प्राण-भय से भागना जानती हैं। वे उसी रास्ते से निकलेंगी, जो आँखों के सामने है। उस पर कुत्ते हों या शेर, घबराहट में भेडों को कुछ नहीं सूझता। सिपाहियों को अपनी वीरता दिखाने का ऐसा अवसर क्यों कभी मिला था। निहत्थों पर हथियार चलाने से आसान और क्या है। सभी संगीनें चढाये तैयार थे कि हुक्म मिले और अपनी निशानेबाज़ी के जौहर दिखायें। राजा साहब अपने खेमे में लतिक के भडकीले-सजीले वस्त्र धारण कर रहे थे। एक आदमी उनकी पाग सँवार रहा था। इन वस्त्रों में उनकी प्रतिभा और भी चमक उठी थी। वस्त्रों मे इतनी तेज बढानेवाली शक्ति है, इसकी उन्हें कभी कल्पना भी न थी। यह ख़बर सुनी, तो तिलमिला गये। वह अपनी समझ मे प्रजा के सच्चे भक्त थे, उन पर कोई अत्याचार न होने देते थे, उनको लूटना नहीं, उनका पालन करना चाहते थे। जब वह प्रजा पर इतना प्राण देते थे, तो क्या प्रजा का धर्म न था कि वह भी उन पर प्राण देती, और फिर इस शुभ अवसर पर! जो लोग इतने कृतघ्न हैं, उन पर किसी तरह की रिआयत करना व्यर्थ है। दयालुता दो प्रकार की होती है। एक में नम्रता होती है, दूसरी में आत्म-प्रशंसा। राजा साहब की दयालुता इसी प्रकार की थी। उन्हें यश की बडी इच्छा थी; पर यहाँ इस शुभ अवसर पर इतने राजाओं-रईसों के सामने, ये दुष्ट लोग उनका अपमान करने पर तुले हुए थे। यह उन पाजियों की घोर नीचता थी और इसका जवाब इसके सिवा और कुछ नहीं था कि उन्हें खूब कुचल दिया जाय। सच है, सीधे का मुँह कुत्ता चाटता है। मैं जितना ही इन लोगों को सन्तुष्ट रखना चाहता हूँ, उतने ही ये लोग शेर होते जाते हैं। चलकर अभी उन्हें इसका मज़ा चखाता हूँ। क्रोध से बावले होकर वह अपनी बन्दूक लिये खेमे से निकल आये और कई आदमियों के साथ वाडे के द्वार पर जा पहुँचे।

चौधरी इतनी देर में झाड-पोछकर उठ बैठा था। राजा साहब को देखते ही रोकर बोला—दुहाई है महाराज की ! सरकार बडा अन्धेर हो रहा है। गरीब लोग मारे जाते हैं।

राजा—तुम सब पहले बाडे के द्वार से हट जाओ, फिर जो कुछ कहना है, मुझसे कहो। अगर किसी ने बाडे के बाहर पॉव रखा, तो जान से मारा जायगा। दंगा किया, तो तुम्हारी जान की खैरियत नही।

चौधरी—सरकार ने हमको काम करने के लिए बुलाया है कि हमारी जान लेने के लिए ?

राजा—काम न करोगे, तो जान ली जायगी।

चौधरी—काम तो आपका करे, खाने, किसके घर जायें ?

राजा—क्या बेहूदा बाते करता है, चुप रह। तुम सब के सब मुझे बदनाम करना चाहते हो। हमेशा से लात खाते चले आये हो और वही तुम्हें अच्छा लगता है। मैने तुम्हारे साथ भलमनसी का बरताव करना चाहा था , लेकिन मालूम हो गया कि लातो के देवता बातो से नही मानते। तुम नीच हो और नीच लातो के बग़ैर सीधा नहीं होता। तुम्हारी यही मरज़ी है, तो यही सही ,

चौधरी—जब लात खाते थे, तब खाते थे। अब न खायेंगे।

राज—क्यो ? अब कौन सुरख़ाब के पर लग गये है ?

चौधरी—वह समय ही लद गया। क्या अब हमारी पीठ पर कोई नही कि मार खाते रहें और मुँह न खोले ? अब तो सेवा-सम्मती हमारी पीठ पर है। क्या वह कुछ न्याय न करेगी। हमारी राय से मेम्बर चुने जाते हैं , क्या कोई हमारी फ़रियाद न सुनेगा।

राजा—अच्छा ! तो तुझे सेवा-समितिवालो का घमंड है ?

चौधरी—हई है, वह हमारी रक्षा करती है, तो क्यो न उसका घमंड करें।

राजा साहब ओठ चबाने लगे—तो यह समितिवालो की कारस्तानी है। चक्रधर मेरे साथ (यह कपट-चाल चल रहे है, लाला चक्रधर !

जिसका बाप मेरी खुशामद की रोटियाँ खाता है। जिसे मित्र समझता था, वही आस्तीन का सांप निकला। देखता हूँ, वह मेरा क्या कर लेता है। एक रुक्का बडे साहब के नाम लिख दूँ, तो बचा के होश ठीक हो जायें। इन मूर्खों के सिर से यह घमण्ड निकाल ही देना चाहिये। यह जहरीले कीडे फैल गये, तो आफ़त मचा देंगे।

चौधरी तो ये बातें कर रहा था, उधर बाडे में घोर कोलाहल मचा हुआ था। सरकारी आदमियों की सूरत देखकर जिनके प्राण-पखेरू उड जाते थे, वे इस समय नि.शंक और निर्भय बन्दूकों के सामने मरने को तैयार खडे थे। द्वार से निकलने का रास्ता न पाकर कुछ आदमियों ने बाडे की लकडियाँ और रस्सियाँ काट डालीं और हजारों आदमी उधर से भडभडाकर निकल पडे, मानो कोई उमड़ी हुई नदी बांध तोड़कर निकल पडे। उसी वक्त एक ओर से सशस्त्र पुलिस के जवान और दूसरी ओर से चक्रधर, समिति के कई युवकों के साथ आते हुए दिखाई दिये। चक्रधर ने निश्चय कर लिया था कि राजा साहब के आदमियों को उनके हाल पर छोड देंगे, लेकिन यहाँ की ख़बरें सुन-सुनकर उनके कलेजे पर सांप-सा लोटता रहता था। ऐसे नाजुक मौके पर दूर खडे होकर तमाशा देखना उन्हें लज्जाजनक मालूम होता था। अब तक तो वह दूर ही से आदमियों को दिलासा देते रहे; लेकिन आज की ख़बरों ने उन्हें यहाँ आने के लिए मज़बूर कर दिया।

उन्हें देखते ही हडतालियों में जान-सी पड गई, जैसे अबोध बालक अपनी माता को देखकर शेर हो जाय। हज़ारों आदमियों ने उन्हें घेर लिया—'भैया आ गये! भैया आ गये!' की ध्वनि से आकाश गूँज उठा।

चक्रधर को यहाँ की स्थिति उससे कहीं भयावह जान पडी, जितना उन्होंने समझा था। राजा साहब को यह ज़िद कि कोई आदमी यहाँ से जाने न पाये। आदमियों को यह जिद कि अब हम यहाँ एक क्षण भी न रहेंगे। सशस्त्र पुलिस सामने तैयार। सबसे बड़ी बात यह कि

मुन्शी वज्रधर खुद एक बन्दूक लिये पैतरे बदल रहे थे, मानो सारे आदमियो को कच्चा ही खा जायेंगे।

चक्रधर ने ऊँची आवाज़ से कहा—क्यो भाइयो, तुम मुझे अपना मित्र समझते हो या शत्रु ?

चौधरी—भैया, यह भी कोई पूछने की बात है। तुम हमारे मालिक हो, सामी हो, सहाय हो! क्या आज तुम्हें पहली ही बार देखा है !

चक्रधर—तो तुम्हें विश्वास है कि मै जो कुछ कहूँ और करूँगा, वह तुम्हारे ही भले के लिए होगा ?

चौधरी—मालिक, तुम्हारे ऊपर विश्वास न करेंगे, तो और किस पर करेंगे ? लेकिन इतना समझ लीजिये हम और सब कर सकते है, यहाँ नही रह सकते। यह देखिये (पीठ दिखाकर), कोड़े खाकर यहाँ किसी तरह न रहूँगा।

चक्रधर इस भीड से निकलकर सीधे राजा साहब के पास आये और बोले—महाराज मै आपसे कुछ विनय करना चाहता हूँ।

राजा साहब ने त्योरियाँ बदलकर कहा—मै इस वक्त कुछ नहीं सुनना चाहता।

चक्रधर—आप कुछ न सुनेंगे, तो पछतायेंगे।

राजा—मैं इन सबों को गोली मार दूँगा !

चक्रधर—दीन प्रजा के रक्त से राज-तिलक लगाना किसी राजा के लिए मङ्गलकारी नही हो सकता। प्रजा का आशीर्वाद ही राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है। मै आपका सेवक हूँ, आपका शुभचिन्तक हूँ, इसीलिए आपकी सेवा मे आया हूँ। मुझे मालूम है कि आपके हृदय मे कितनी दया है और प्रजा से आपको कितना स्नेह है। यह सारा तूफान अयोग्य कर्मचारियो का खडा किया हुआ है। उन्हीं के कारण आज आप उन लोगो के रक्त के प्यासे बन गये हैं, जो आपकी दया और कृपा के प्यासे है। ये सभी आदमी इस वक्त झल्लाये हुए है।

गोली चलाकर आप उनके प्राण ले सकते हैं ; लेकिन उनका रक्त केवल इसी बाड़े मे न सूखेगा, यह सारा विस्तृत कैंप उस रक्त से सिंच जायगा ; उसकी लहरो के झोके से यह विशाल मंडप उखड़ जायगा और यह आकाश मे फहराती हुई ध्वजा भूमि पर गिर पड़ेगी। अभिषेक का दिन दान और दया का है। रक्तपात का नही। इस शुभ अवसर पर एक हत्या भी हुई, तो वह सहस्त्रों रूप धारण करके ऐसी भयङ्कर अभिनय दिखायेगी कि सारी रियासत में हाहाकार मच जायेगा।

राजा साहब अपनी टेक पर अड़ना जानते थे ; किन्तु इस समय उनका दिल कॉप उठा। वही प्राणी, जो दिन-भर गालियाँ बकता है, प्रात.काल कोई मिथ्या शब्द मुँह से नहीं निकलने देता। वही दूकान-दार, जो दिन-भर टेनी मारता है, प्रातःकाल ग्राहक से मोल-जोल तक नहीं करता। शुभ मुहूर्त पर हमारी मनोवृत्तियाँ धार्मिक हो जाती हैं।

राजा साहब कुछ नरम होकर बोले—मै खुद नहीं चाहता कि मेरी तरफ़ से किसी पर अत्याचार किया जाय ; लेकिन इसके साथ ही यह भी नहीं चाहता कि प्रजा मेरे सिर चढ जाय। इन लोगो को अगर कोई शिकायत थी, तो इन्हें आकर मुझसे कहना चाहिये था। अगर मै न सुनता, तो इन्हें अख़्तियार था, जो चाहते करते ; पर मुझसे न कहकर इन लोगो ने हेंकड़ी करनी शुरू की, रात घोड़ो को घास नही दी और इस वक्त भागे जाते हैं। मैं यह घोर अपमान नहीं सह सकता।

चक्रधर—आपने इन लोगो को अपने पास आने का अवसर कब दिया? आपके द्वारपाल इन्हें दूर ही से भगा देते थे। आपको मालूम है कि इन गरीबो को एक सप्ताह से कुछ भोजन नही मिला?

राजा—एक सप्ताह से भोजन नहीं मिला! यह आप क्या कहते है? मैने सख़्त ताकीद कर दी थी कि हरएक मज़दूर को इच्छा-पूर्ण भोजन दिया जाय। क्यो दीवान साहब, क्या बात है?

हरिसेवक—धर्मावतार, आप इन महाशय की बातों में न आइये। यह सारी आग इन्हीं की लगाई हुई है। प्रजा को बहकाना और भड़-

काना इन लोगो ने अपना धर्म बना रखा है। यहाँ से हर एक आदमी को दोनो वक्त भोजन दिया जाता था।

मुंशी—दीनबन्धु, यह लडका बिलकुल नासमझ है। दूसरों ने जो कुछ कह दिया, उसे सच समझ लेता है। तुमसे किसने कहा बेटा कि आदमियो को भोजन नहीं मिलता था। भण्डारी तो मैं हूँ, मेरे सामने जिंस तौली जाती थी। मै पूछ-पूछ देता था। बरातियों की भी कोई इतनी ख़ातिर न करता होगा। इतनी बात भी न जानता तो तहसीलदारी क्या ख़ाक करता।

राजा—मै इसकी पूछ-ताछ करूँगा।

हरिसेवक—हुजूर, इन्ही लोगो ने आदमियो को उभारकर सरकश बना दिया है। यह लोग सबसे कहते फिरते हैं कि ईश्वर ने सभी मनुष्यों को बराबर-बराबर बनाया है, किसी को तुम्हारे ऊपर राज्य करने का अधिकार नहीं है, किसी को तुमसे बेगार लेने का अधिकार नहीं। प्रजा ऐसी बातें सुन-सुनकर शेर हो गई है।

राजा—इन बातो मे तो मुझे कोई बुराई नही नज़र आती। मै खुद प्रजा से यही बातें कहना चाहता हूँ।

हरिसेवक—हुजूर, ये लोग कहते है, ज़मीन के मालिक तुम हो। जो ज़मीन से बीज उगाये, वही उसका मालिक है। राजा तो तुम्हारा गुलाम है।

राजा—बहुत ठीक कहते हैं। इसमे मुझे तो बिगडने की कोई बात नही मालूम होती। वास्तव में मैं प्रजा का गुलाम हूँ; बल्कि उसके गुलाम का गुलाम हूँ।

हरिसेवक—हुजूर, मै इन लोगों की बाते कहाँ तक कहूँ। कहते है राजा को इतने बडे महल में रहने का कोई हक़ नही। उसका संसार में कोई काम ही नही।

राजा—बहुत ही ठीक कहते है। आख़िर मै पडे-पडे खाने के सिवा और क्या करता हूँ?

चक्रधर ने झुँझलाकर कहा - ठाकुर साहब, आप मेरे स्वामी हैं; लेकिन क्षमा कीजिये, आप मेरे साथ बड़ा अन्याय कर रहे हैं। मैंने प्रजा को उनके अधिकार अवश्य समझाये हैं; लेकिन यह कभी नहीं कहा कि राजा को संसार में रहने का कोई हक़ नहीं; क्योंकि मैं जानता हूँ, जिस दिन राजाओं की ज़रूरत न रहेगी, उस दिन उनका अन्त हो जायगा। देश में वही राज-व्यवस्था होती है, जिसका वह अधिकारी होता है।

राजा मैं तो बुरा नहीं मानता, ज़रा भी नहीं। आपने कोई ऐसी बात नहीं कही, जो और लोग न कहते हों। वास्तव में जो राजा प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन न करे, उसका जीना व्यर्थ है।

चक्रधर को मालूम हुआ कि राजा साहब मुझे बना रहे हैं। यह अवसर मज़ाक का न था। हज़ारों आदमी साँस बन्द किये सुन रहे थे कि यह लोग क्या फैसला करते हैं और यहाँ इन लोगों को मज़ाक सूझ रही है। गरम होकर बोले—अगर आपके यह भाव सच्चे होते, तो प्रजा पर यह विपत्ति न आती। राजाओं की यह पुरानी नीति है कि प्रजा का मन मीठी-मीठी बातों से भरें और अपने कर्मचारियों को मनमाने अत्याचार करने दें। वह राजा, जिसके कानों तक प्रजा की पुकार न पहुँचने पाये, आदर्श नहीं कहा जा सकता।

राजा—किसी तरह नहीं। उसे गोली मार देनी चाहिये। जीता चुनवा देना चाहिये। प्रजा का गुलाम है कि दिल्लगी है?

चक्रधर यह व्यंग्य न सह सके। उनकी स्वाभाविक शक्ति ने उनका साथ छोड़ दिया। चेहरा तमतमा उठा। बोले—जिस आदर्श के सामने आपको सिर झुकाना चाहिये, उसका मज़ाक उड़ाना आपको शोभा नहीं देता। समाज की यह व्यवस्था अब थोड़े दिनों की मेहमान है और वह समय आ रहा है, जब या तो राजा प्रजा का सेवक होगा, या होगा ही नहीं। मैंने कभी यह अनुमान न किया था कि आपके वचन और कर्म में इतना जल्द इतना बड़ा भेद हो जायगा।

क्रोध ने अब अपना यथार्थ रूप धारण किया। राजा साहब अभी तक तो व्यंग्यों से चक्रधर को परास्त करना चाहते थे; लेकिन जब चक्रधर के वार मर्मस्थल पर पड़ने लगे, तो उन्हें भी अपने शस्त्र निकालने पड़े। डपटकर बोले—अच्छा बाबूजी, अब अपनी ज़बान बन्द करो। मै जितनी ही तरह देता जाता हूँ, उतने ही आप सिर पर चढ़े जाते है। मित्रता के नाते जितना सह सकता था, उतना सह चुका। अब नहीं सह सकता। मैं प्रजा का गुलाम नहीं हूँ, प्रजा मेरे पैरो की धूल है। मुझे अधिकार है कि उसके साथ जैसा उचित समझूँ, वैसा सलूक करूँ। किसी को हमारे और हमारी प्रजा के बीच मे बोलने का हक नही है। आप अब कृपा करके यहां से चले जाइये और फिर कभी मेरी रियासत मे क़दम न रखियेगा; वरना शायद आपको पछताना पड़े। जाइये।

मुंशी वज्रधर की छाती धक-धक करने लगी। चक्रधर को हाथो से पीछे हटाकर बोले—हुजूर की कृपा-दृष्टि ने इसे शोख़ कर दिया है। अभी तक बड़े आदमियो की सोहबत मे बैठने का मौक़ा तो मिला नही। बात करने की तमीज़ कहाँ से आये।

लेकिन चक्रधर भी जवान आदमी थे, उस पर सिद्धान्तो के पक्के, आदर्श पर मिटनेवाले, अधिकार और प्रभुत्व के जानी दुश्मन, वह राजा साहब के उद्दण्ड शब्दो से ज़रा भी भयभीत न हुए। यह उस सिंह की गरज थी, जिसके दाँत और पंजे टूट गये हों। यह उस रस्सी की ऐंठ थी, जो जल गई हो। तने हुए सामने आये और बोले—आपको अपने मुख से ये शब्द निकालते हुए शर्म आनी चाहिये थी। अगर संपत्ति से इतना पतन हो सकता है, तो मै कहूँगा कि इससे बुरी चीज़ संसार मे नही। आपके भाव कितने पवित्र थे। कितने ऊँचे! आप प्रजा पर अपने को अर्पण कर देना चाहते थे। आप कहते थे, मै प्रजा को अपने पास बेरोक-टोक आने दूँगा, उनके लिए मेरे द्वार हरदम खुले रहेंगे। आप कहते थे, मेरे कर्मचारी उनकी ओर टेढ़ी

निगाह से भी देखेंगे, तो उनकी शामत आ जायगी, वे सारी बातें क्या आपको भूल गईं, और इतनी जल्द ? अभी तो बहुत दिन नही गुज़रे । अब आप कहते हैं प्रजा मेरे पैरों की धूल है ! ईश्वर आपको सुबुद्धि दें ।

राजा साहब कहाँ तो क्रोध से उन्मत्त हो रहे थे, कहाँ यह लगती हुई बातें सुनकर रो पडे । क्रोध निरुत्तर होकर पानी हो जाता है । या यों कहिये कि आँसू अव्यक्त भावों ही का रूप है । ग्लानि थी, या पश्चात्ताप ; अपनी दुर्बलता का दु:ख था या विवशता का ; या इस बात का रंज था कि यह दुष्ट मेरा इतना अपमान कर रहा है और मै कुछ नहीं कर सकता—इसका निर्णय करना कठिन है ।

मगर एक ही क्षण में राजा साहब सचेत हो गये । प्रभुता ने आँसुओं को दबा दिया । अकडकर बोले—मैं कहता हूँ यहां से चले जाओ !

हरिसेवक—आपको शर्म नहीं आती कि किससे ऐसी बातें कर रहे हैं ।

वज्रधर—बेटा क्यों मेरे मुँह मे कालिख लगा रहे हो ?

चक्रधर—जब तक आप इन आदमियो को जाने न देंगे, मै नहीं जा सकता ।

राजा—मेरे आदमियों से तुम्हें कोई सरोकार नहीं है । उनमें से अगर एक भी हिला, तो उसकी लाश ज़मीन पर होगी ।

चक्रधर तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि उन्हें यहां से हटा ले जाऊँ ?

यह कहकर चक्रधर मज़दूरों की ओर चले । राजा साहब जानते थे कि इनका इशारा पाते ही सारे मज़दूर हवा हो जायेंगे, फिर सशस्त्र सेना भी उन्हें न रोक सकेगी । तिलमिलाकर बन्दूक लिये हुए चक्रधर के पीछे दौडे और ऐसे ज़ोर से उन पर कुन्दा चलाया कि सिर पर लगता तो शायद वह वहीं ठण्डे हो जाते ; मगर कुशल हुई । कुन्दा पीठ में लगा और उसके झोंके से चक्रधर कई हाथ पर जा गिरे । उनका ज़मीन पर गिरना था कि पाँच हज़ार आदमी बाडे को तोडकर,

सशस्त्र सिपाहियों को चीरते, बाहर निकल आये और नरेशों के कैम्प की ओर चले। रास्ते में जो कर्मचारी मिला उसे पीटा। मालूम होता था कैम्प में लूट मच गई है। दूकानदार अपनी दूकानें समेटने लगे, दर्शक अपनी धोतियाँ सँभालकर भागने लगे। चारों तरफ भगदड़ पड़ गई। जितने बेफिक्रे, शोहदे, लुच्चे तमाशा देखने आये थे, वे सब उपद्रव-कारियों से मिल गये। यहाँ तक कि नरेशों के कैम्प तक पहुँचते-पहुँचते उनकी संख्या दूनी हो गई।

राजा-रईस अपनी वासनाओं के सिवा और किसी के गुलाम नहीं होते। वक्त की गुलामी भी उन्हें पसन्द नहीं। वे किसी नियम को अपनी स्वेच्छा में बाधा नहीं डालने देते। फिर उनको इसकी क्या परवा कि सुबह है या शाम। कोई मीठी नींद के मजे लेता था, कोई गाना सुनता था, कोई स्नान-ध्यान में मग्न था और कुछ लोग तिलक-मंडप में जाने की तैयारियाँ कर रहे थे। कहीं भङ्ग घुटती थी, कहीं कवित्त-चरचा हो रही थी और कहीं नाच हो रहा था। कोई नाश्ता कर रहा था और कोई लेटा हुआ नौकरों से चप्पी करा रहा था। उत्तर-दायित्वहीन स्वतन्त्रता अपनी विविध लीलाएँ दिखा रही थी। अगर उपद्रवी इस कैम्प में पहुँच जाते, तो महा अनर्थ हो जाता। न-जाने कितने राजवंशों का अन्त हो जाता; किन्तु राजाओं की रक्षा उनका इकबाल करता है। अँगरेज़ी कैम्प में १०-१२ आदमी अभी शिकार खेलकर लौटे थे। उन्होंने जो यह हंगामा सुना, तो बाहर निकल आये और जनता पर अन्धाधुन्द बन्दूकें छोड़ने लगे। पहले तो उत्तेजित जनता ने बन्दूकों की परवा न की, उसे अपनी संख्या का बल था। लोग सोचते थे, मरते-मरते हम में से इतने आदमी कैम्प में पहुँच जायँगे कि नरेशों को कहीं भागने की जगह न मिलेगी। हम सारे प्रान्त को इन अत्याचारियों से मुक्त कर देंगे! ये सब भी तो अपनी प्रजा पर ऐसा ही अत्याचार करते होंगे।

जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो जाती है।

गोलियों की पहली बाढ़ आई। कई आदमी गिर गये।

चौधरी—देखो भाई, घबराना नहीं, जो गिरता है उसे गिरने दो, आज ही तो दिल के हौसले निकले हैं। जय हनुमानजी की!

एक मज़दूर—बढ़े आओ, बढ़े आओ, अब मार लिया है। आज ही तो...

उसके मुँह से पूरी बात न निकलने पाई थी कि गोलियों की दूसरी बाढ़ आई और कई आदमियों के साथ दोनों नेताओं का काम तमाम कर गई। एक क्षण के लिए सबके पैर रुक गये। जो जहाँ था, वहीं खड़ा रह गया। समस्या थी कि आगे जायँ या पीछे? सहसा एक युवक ने कहा—मारो, रुक क्यों गये? सामने पहुँचकर हिम्मत छोड़े देते हो! बढ़े चलो। जय दुर्गा माई की!

दूसरा बोला—आज जो मरेगा, बैकुण्ठ में जायगा। बोलो, हनुमानजी की जय! ..

उसे भी गोली लगी और चक्कर खाकर गिर पड़ा।

इतने में दीवान साहब बन्दूक लिये पीछे से दौड़ते हुए आ पहुँचे। गुरुसेवक भी उनके साथ थे। दोनों एक दूसरे रास्ते से कैम्प के द्वार पर पहुँच गये थे।

हरिसेवक—तुम मेरे पीछे खड़े हो जाओ और यहीं से निशाना लगाओ।

गुरुसेवक—अभी फ़ैर न कीजिये। मैं ज़रा इन्हें समझा लूँ। समझाने से काम निकल जाय, तो रक्त क्यों बहाया जाय?

हरिसेवक—अब समझाने का मौका नहीं है। अभी दम-के-दम में सब-के-सब अन्दर घुस आयेंगे, तो प्रलय हो जायेगा।

किन्तु गुरुसेवक के हृदय में दया थी। पिता की बात न मानकर वह सामने आ गये और ललकार कर बोले—तुम लोग यहाँ क्यों आ रहे हो। यह न समझो कि तुम कैम्प के द्वार पर पहुँच गये हो। यहाँ आते-आते तुम आधे हो जाओगे।

एक मजदूर—कोई चिन्ता नहीं। मर-मरकर जीने से एक बार मर जाना अच्छा है। मारो, आगे बढ़ो, क्या हिम्मत छोड़ देते हो?

गुरुसेवक—आगे एक कदम भी रखा और गिरे! यह समझ लो कि तुम्हारे आगे मौत खड़ी है।

मज़दूर—हम आज मरने के लिए ही कमर बाँधकर...

अँगरेज़ी कैम्प से फिर गोलियों की बाढ़ आई और कई आदमियों के साथ यह आदमी भी गिर गया, और उसके गिरते ही सारे समूह में खलबली पड़ गई। अभी तक इन लोगों को न मालूम था कि गोलियाँ किधर से आ रही हैं। समझ रहे थे कि इसी कैम्प से आती होंगी। अब शिकारी लोग बहुत बढ़ आये थे और साफ़ नज़र आ रहे थे।

एक चमार बोला साहब लोग गोली चला रहे हैं।

दूसरा—गोरों की फौज़ है, फौज़।

तीसरा—चलो उन्हीं सबों को पथें। मुर्गी-अंडे खा-खाकर खूब मोटाये हुए हैं।

चौथा यही सब तो राजाओं को बिगाड़े हुए हैं। दो शिकार भी मिल गये, तो मेहनत सफल हो जायगी।

लेकिन कायरों की हिम्मतें टूटने लगी थीं। लोग चुपके-चुपके दायें-बायें से सरकने लगे थे। यहाँ प्राण देने से बाजार में लूट मचाना कहीं आसान था। देखते-देखते पीछे के सभी आदमी खिसक गये। केवल आगे के लोग खड़े रह गये थे। उन्हें क्या ख़बर थी कि पीछे क्या हो रहा है। वे अँगरेज़ी कैम्प की तरफ मुड़े और एक ही हल्ले में अँगरेजी कैम्प के फाटक तक आ पहुँचे। अब तो यहाँ भी भगदड़ पड़ी। एक ओर नरेशों के कैम्प से मोटरें निकल-निकलकर पीछे की ओर से दौड़ी चली जा रही थीं। इधर अँगरेजी कैम्प से भी मोटरों का निकलना शुरू हुआ। एक क्षण में सारी लेडियाँ गायब हो गई। मर्दों में भी आधे से ज्यादा निकल भागे। केवल वही लोग रह गये,

जो मोरचे पर खड़े थे और जिनके लिए भागना मौत के मुँह मे जाना था, मगर उन सबो के हाथो में मार्टिन और माज़र के यन्त्र थे। इधर ईश्वर की दी हुई लाठियाँ थी या ज़मीन से चुने हुए पत्थर। यद्यपि हड़तालियो का दल एक ही हल्ले मे इस फाटक तक पहुँच गया; पर वहाँ तक पहुँच-पहुँचते कोई २० आदमी गिर पडे। अगर इस वक्त ५० गज़ के अन्तर पर भी इतने आदमी गिरे होते तो शायद सबके पैर उखड जाते; लेकिन यह विश्वास कि अब मार लिया है, उनके हौसले बढाये हुए था। विजय के सम्मुख पहुँचकर कायर भी वीर हो जाते हैं। घर के समीप पहुँचकर थके हुए पथिक के पैरो मे भी पर लग जाते है।

इन मनुष्यो के मुख पर इस समय हिंसा झलक रही थी। चेहरे विकृत हो गये थे। जिसने इन्हें इस दशा में न देखा हो, वह कल्पना भी नहीं कर सकता कि ये वही दीनता के पुतले है, जिन्हें एक काठ की पुतली भी जिस नाच चाहे नचा सकती थी। अँगरेज योद्धा अभी तक तो मोरचे पर खडे बन्दूके छोड रहे थे, लेकिन इस भयंकर दल को सामने देखकर उनके औसान जाते रहे। दो-चार तो भागे, दो-तीन मूर्च्छा खाकर गिर पडे। केवल पांच फौजी अफसर अपनी जगह पर डटे रहे। उन्हें बचने की कोई आशा न थी और इसी निराशा ने उन्हें अदम्य साहस प्रदान कर दिया था। वे जान पर खेले हुए थे। क्षण-क्षण पर बन्दूके चलाते थे, मानो बन्दूक चलाने की कलें हो। जो आगे बढ़ता था, उनके अचूक निशाने का शिकार हो जाता था। इधर से ढेले और पत्थरो की वर्षा हो रही थी, जो फाटक तक मुश्किल से पहुँचती थी। अब सामने पहुँचकर लोगों ने आगे बढ़कर पत्थर चलाने शुरु किये। यहाँ तक कि अँगरेज़ चोट खाकर गिर पडे। एक का सिर फट गया था, दूसरे की बाँह टूट गई थी। केवल तीन आदमी रह गये, और वही इन आदमियों रोके रखने के लिए काफी थे; लेकिन उनके पास भी अब कारतूस न रह गये थे। कठिन समस्या थी। प्राण

बचने की कोई आशा नहीं। भागने की कल्पना ही से उन्हें घृणा होती है। जिन मनुष्यों को हमेशा पैरों से ठुकराया किये, उन्हें कुली कहते और कुत्तों से भी नीच समझते रहे उनके सामने पीठ दिखाना ऐसा अपमान था, जिसे वे किसी तरह न सह सकते थे। इधर हडतालियों के हौसले बढ़ते जाते थे। शिकार अब बेदम होकर गिरा चाहता था। हिंसा के मुँह से लार टपक रही थी।

एक आदमी ने कहा हाँ बहादुरो, बस एक हल्ले की और कसर है, घुस पडो। अब कहाँ जाते है।

दूसरा बोला फांसी तो पडेंगे ही, अब इन्हें क्यों छोडें !

सहसा एक आदमी पीछे से भीड को चीरता, बेतहाशा दौडता हुआ आकर बोला—बस, बस, क्या करते हो ! ईश्वर के लिए हाथ रोको ! क्या गजब करते हो ! लोगों ने चकित होकर देखा, तो चक्रधर थे। सैकडों आदमी उन्मत्त होकर उनकी ओर दौडे और उन्हें घेर लिया। जय-जयकार की ध्वनि से आकाश गुँजने लगा।

एक मज़दूर ने कहा—हमे अपने एक सौ भाइयों के खून का बदला लेना है।

चक्रधर ने दोनो हाथ ऊपर उठाकर कहा—कोई एक कदम आगे न बढे। ख़बरदार !

मज़दूर यारो, बस एक हल्ला और !

चक्रधर—हम फिर कहते हैं अब एक कदम भी आगे न उठे।

जिले के मैजिस्ट्रेट मिस्टर जिम ने कहा बाबू साहब, खुदा के लिए हमे बचाइये।

फौज के कप्तान मिस्टर सिम बोले—हम हमेशा आपको दुआ देगा। हम सरकार से आपका सिफारिश करेगा।

एक मज़दूर—हमारे एक सौ जवान भून डाले, तब आप कहाँ थे ? यारो, क्या खडे हो बाबूजी का क्या बिगडा है। मारे तो हमें गये है। मारो बढ़के

चक्रधर ने उपद्रवियों के सामने खड़े होकर कहा—अगर तुम्हें खून की ऐसी प्यास है, तो मैं हाजिर हूँ, मेरी लाश को पैरों से कुचलकर तभी तुम आगे बढ़ सकते हो।

मज़दूर—भैया हट जाओ, हमने बहुत मार खाई है, बहुत सताये गये हैं, इस वक्त दिल की आग बुझा लेने दो!

चक्रधर—मेरा लहू इस ज्वाला को शान्त करने के लिए काफ़ी नहीं है?

मज़दूर—भैया, तुम सान्त-सान्त बका करते हो; लेकिन उसका फल क्या होता है। हमें जो चाहता है मारता है, जो चाहता है पीसता है, तो क्या हमीं सान्त बैठे रहें? सान्त रहने से तो और भी हमारी दुरगत होती है। हमें सान्त रहना मत सिखाओ। हमें मरना सिखाओ, तभी हमारा उद्धार कर सकोगे।

चक्रधर—अगर अपनी आत्मा की हत्या करके हमारा उद्धार भी होता हो, तो हम आत्मा की हत्या न करेंगे। संसार को मनुष्य ने नहीं बनाया है, ईश्वर ने बनाया है। भगवान् ने उद्धार के जो उपाय बताये हैं, उनसे काम लो और ईश्वर पर भरोसा रखो।

मज़दूर—हमारी फांसी तो हो ही जायेगी। तुम माफ़ी तो न दिला सकोगे।

मिस्टर जिम—हम किसी को सज़ा न देंगे।

मिस्टर सिम—हम सबको इनाम दिलायेगा।

चक्रधर—इनाम मिले या फाँसी, इसकी क्या परवा। अभी तक तुम्हारा दामन खून के छींटों से पाक है उसे पाक ही रखो। ईश्वर की निगाह में तुम निर्दोष हो। अब अपने को कलंकित मत करो, जाओ।

मज़दूर—अपने भाइयों का खून कभी हमारे सिर से न उतरेगा; लेकिन तुम्हारी यही मरज़ी है, तो लौट जाते हैं। आख़िर फाँसी पर तो चढ़ना ही है।

चक्रधर कुन्दे की चोट से कुछ देर तक तो अचेत पड़े रहे थे। जब

होश आया, तो देखा, दाहिनी ओर हड़तालियों का एक दल अँगरेजी कैम्प के द्वार पर खड़ा है, बाईं ओर बाज़ार लुट रहा है और सशस्त्र पुलिस के सिपाही हड़तालियों के साथ मिले हुए दूकानें लूट रहे है और विशाल तिलक-मंडप से अग्नि की ज्वाला उठ रही है। वह उठे और अँगरेज़ी कैम्प की ओर भागे। वही उनके पहुँचने की सबसे ज्यादा ज़रूरत थी। बाज़ार मे रक्तपात का भय न था। रक्षक स्वयं लुटेरे बने हुए थे। उन्हें लूट से कहाँ फुरसत थी कि हड़तालियो का शिकार करते। अँगरेज़ी कैम्प मे ही स्थिति सबसे भयावह थी। इस नाजुक मौके पर वह न पहुँच जाते, तो किसी अँगरेज़ की जान न बचती सारा कैम्प लुट जाता और खेमे राख के ढेर हो जाते। हड़तालियों की रक्षा करनी तो उन्हें बदी न थी; लेकिन विदेशियों को उन्होने मौत के मुँह से निकाल लिया। एक क्षण मे सारा कैम्प साफ़ हो गया। एक मज़दूर भी न रह गया।

इन आदमियों के जाते ही वे लोग भी इनके साथ हो लिये, जो पहले लूट के लालच से चले आये थे। जिस तरह पानी आ जाने से कोई मेला उठ जाता है, ग्राहक, दूकानदार और उनकी दूकानें सब न-जाने कहाँ लुप्त हो जाती है, उसी भाँति एक क्षण में सारे कैम्प मे सन्नाटा छा गया। केवल तिलक-मंडप से अभी तक आग की ज्वाला निकल रही थी। राजा साहब और उनके साथ के कुछ गिने-गिनाये आदमी उसके सामने चुपचाप खड़े थे, मानो श्मशान में खड़े किसी मृतक की दाह-क्रिया कर रहे हो। बाज़ार लुटा, गोलियां चलीं, आदमी मक्खियो की तरह मारे गये; पर राजा साहब मंडप के सामने ही खड़े रहे। उन्हें अपनी सारी मनोकामनाएँ अग्नि-राशि में भस्म होती हुई मालूम होती थीं।

अँधेरा छा गया था। घायलों के कराहने की आवाज़े आ रही थी। चक्रधर और उनके साथ के युवक उन्हें सावधानी से उठा-उठाकर एक वृक्ष के नीचे जमा कर रहे थे। कई आदमी तो उठाते ही उठाते सुरलोक

सिधारे। कुछ सेवक तो उन्हें ले जाने की फिक्र करने लगे। कुछ लोग शेष घायलों की देखभाल मे लगे। रियासत का डाक्टर सज्जन मनुष्य था। यहां से सन्देशा जाते ही आ पहुँचा। उसकी सहायता ने बडा काम किया। आकाश पर काली घटा छाई हुई थी। चारो तरफ़ अँधेरा था। तिलक-मण्डप की आग भी बुझ चुकी थी। उस अन्धकार मे ये लोग लालटेनें लिये घायलो को अस्पताल ले जा रहे थे।

एकाएक कई सिपाहियो ने आकर चक्रधर को पकड लिया और ऑगरेज़ी कैम्प की तरफ़ ले चले। पूछा, तो मालूम हुआ कि जिम साहब का यह हुक्म है। चक्रधर ने सोचा मैंने ऐसा कोई अपराध तो नहीं किया जिसका यह दण्ड हो। फिर यह पकड-धकड क्यो? सम्भव है, मुझसे कुछ पूछने के लिए बुलाया हो और ये मूर्ख सिपाही उसका आशय न समझकर मुझे यो पकडे लिये जाते हो। यह सोचते हुए वह मिस्टर जिम के खेमे में दाख़िल हुए।

देखा, तो वहां कचहरी लगी हुई है। सशस्त्र पुलिस के सिपाही, जिन्हें अब लूट से फ़ुरसत मिल चुकी थी, द्वार पर संगीनें चढाये खडे थे। अन्दर मिस्टर जिम और मिस्टर सिम रौद्र-रूप धारण किये, सिगार पी रहे थे, मानो क्रोधाग्नि मुँह से निकल रही हो। राजा साहब मिस्टर जिम के बगल में बैठे थे। दीवान साहब क्रोध से आंखें लाल [illegible] मेज पर हाथ रखे कुछ कह रहे थे और मुंशी वज्रधर हाथ बांधे [illegible] मे खडे थे।

[illegible] को देखते ही मिस्टर जिम ने कहा—राजा साहब कहता [illegible] सब तुम्हारी शरारत है। तुम और तुम्हारा साथी लोग बहुत [illegible] से रियासत के असामियों को भडका रहा है और आज भी तुम न [illegible], तो यह दंगा न मचता।

चक्रधर आवेश में आकर बोले—अगर राजा साहब आपका ऐसा विचार है, तो इसका मुझे दु:ख है। हम लोग जनता में जागृति अवश्य फैलाते हैं, उनमें शिक्षा का प्रचार करते हैं, उन्हें स्वार्थान्ध

अमलों के फन्दो से बचाने का उपाय करते है, और उन्हें अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करने का उपदेश देते हैं। हम चाहते है कि वे मनुष्य बनें और मनुष्यों की भाँति संसार में रहें। वे स्वार्थ के दास बनकर कर्मचारियों की खुशामद न करें, भयवश अपमान और अत्याचार न सहें। अगर इसे कोई भडकाना समझता है, तो समझे। हम इसे अपना कर्तव्य समझते हैं।

जिम—तुम्हारे उपदेश का यह नतीजा देखकर कौन कह सकता है कि तुम उन्हें नही भडकाता?

चक्रधर—यहाँ उन आदमियो पर अत्याचार हो रहा था और उन्हें यहाँ से चले जाने या काम न करने का अधिकार था। अगर उन्हें शान्ति के साथ चले जाने दिया जाता, तो यह नौबत कभी न आती।

राजा—हमे परम्परा से बेगार लेने का अधिकार है और उसे हम नही छोड सकते। आप असामियो को बेगार देने से मना करते हैं और आज के हत्याकांड का सारा भार आपके ऊपर है।

चक्रधर—कोई अन्याय केवल इसलिए मान्य नहीं हो सकता कि लोग उसे परम्परा से सहते आये हैं।

जिम—हम तुम्हारे ऊपर बग़ावत का मुकदमा चलायेगा। तुम dangerous आदमी है।

राजा - हुजूर, मै इनके साथ कोई सख्ती नही करना चाहता, केवल इनसे यह प्रतिज्ञा लिखाना चाहता हूँ कि यह या इनके सहकारी लोग मेरी रियासत में न जायँ।

चक्रधर—मै ऐसी प्रतिज्ञा नही कर सकता। दीनो पर अत्याचार होते देखकर दूर खडे रहना वह दशा है, जो हम किसी तरह नही सह सकते। अभी बहुत दिन नही गुज़रे कि राजा साहब के विचार मेरे विचारों से पूरे-पूरे मिलते थे। उन्हें अपने विचारो को बदलने के नये कारण हो गये हो, मेरे लिए कोई कारण नहीं।

राजा—मेरे प्रजा-हित के विचारो मे कोई अन्तर नही हुआ। मैं

अब भी प्रजा का सेवक हूँ, लेकिन आप उन्हें राजनीतिक यन्त्र बनाना चाहते हैं और इसी उद्देश्य से आप उनके हितचिन्तक बनते हैं। मैं उन्हें राजनीति में नहीं डालना चाहता। आप उनके आत्म-सम्मान की रक्षा करते हैं, मैं उनके प्राणों की। बस आपके और मेरे विचारों में केवल यही अन्तर है।

मिस्टर जिम ने सब इन्सपेक्टर से कहा—इनको हवालात मे रखो, कल इजलास पर पेश करो।

वज्रधर ने आगे बढ़कर जिम के पैरों पर पगड़ी रख दी और बोले—हुजूर, यह गुलाम का लड़का है। हुजूर, इसकी जांबख्शी करें। हुजूर, का पुराना गुलाम हूँ। गुलाम जब खुरजे मे तहसीलदार था, तो हुजूर ने सनद अता फ़रमाई थी हुजूर!

मिस्टर जिम—ओ! तहसीलदार साहब, यह तुम्हारा लड़का है? तुमने उसको घर से निकाल क्यों नही दिया। सरकार तुमको इसलिए .शन नहीं देता कि तुम बागियों को पाले। हम तुम्हारा पेंशन बन्द कर देगा। पेंशन इसीलिए दिया जाता है कि तुम सरकार का वफ़ादार नौकर बना रहे।

वज्रधर—हुजूर मेरे मालिक हैं। आज इसका कुसूर माफ़ कर दिया जाय। आज से मैं इसे घर से निकलने ही न दूँगा।

चक्रधर ने पिता को तिरस्कार-भाव से देखकर कहा—आप क्यों ऐसी बातों से मुझे लज्जित करते हैं। मिस्टर जिम और राजा साहब मुझे जेल के बाहर भी कैद करना चाहते हैं। मेरे लिए जेल की क़ैद इस क़ैद से कहीं आसान है।

वज्रधर—बेटा, मैं अब थोड़े ही दिनों का मेहमान हूँ। मुझे मर जाने दो, फिर तुम्हारे जो जी में आये करना। मैं मना करने न आऊँगा।

हरिसेवक—तहसीलदार साहब, आप व्यर्थ हैरान होते हैं। आपका काम समझा देना है। वह समझदार है। अपना भला-बुरा समझ

सकते है। जब वह खुद आग मे कूद रहे है, तो आप कब तक उन्हें रोकियेगा ?

वज्रधर—मेरी यह अर्ज़ है हुजूर कि मेरी पेंशन पर रेत न आये।

जिम—तुमको इस मुकदमे में शहादत देना होगा। तुमने अच्छा शहादत दिया, तो तुम्हारा पेंशन बहाल रखा जायगा।

चक्रधर—लीजिये, आपकी पेंशन बहाल हो गई, केवल मेरे विरुद्ध गवाही दे दीजियेगा।

राजा—बाबू चक्रधर, अभी कुछ नही बिगडा है। आप प्रतिज्ञा लिखकर शौक़ से घर जा सकते हैं। मै आपको तङ्ग नहीं करना चाहता। हॉ, इतना ही चाहता हूँ कि फिर ऐसे हंगामे न खडे हो।

चक्रधर—राजा साहब, क्षमा कीजियेगा, जब तक असन्तोष के कारण दूर न होगे, ऐसी दुर्घटनाएँ होगी और फिर होगी। मुझे आप पकड सकते हैं, कैद कर सकते है; पर इससे चाहे आपको शान्ति हो; पर वह असन्तोष अणुमात्र भी कम न होगा, जिससे प्रजा का जीवन असह्य हो गया है। असन्तोष को भडकाकर आप प्रजा को शान्त नहीं कर सकते। हॉ, उन्हें कायर बना सकते है। अगर आप उन्हें कर्महीन, बुद्धिहीन, पुरुषार्थहीन मनुष्य का तन धारण करनेवाले सियार और सूअर बनाना चाहते है, तो बनाइये; पर इससे न आपकी कीर्ति होगी, न ईश्वर प्रसन्न होगे और न स्वयं आपकी आत्मा तुष्ट होगी।

१५

राजाओं-महाराजाओं को क्रोध आता है, तो उनके सामने जाने की किसी की हिम्मत नही पडती। न जाने क्या ग़ज़ब हो जाय, क्या आफ़त आ जाय। विशालसिह किसी को फॉसी न दे सकते थे, यहॉ तक कि क़ानून की रू से वह किसी को गालियॉ भी न दे सकते थे, कानून

उनके लिए भी था, वह भी सरकार की प्रजा थे; किन्तु नौकरी तो छीन सकते थे, जुरमाना तो कर सकते थे? इतना अख्तियार क्या थोडा है! सारी रात गुज़र गई पर राजा साहब अपने कमरे से बाहर नहीं निकले। उनकी पलकें तक न झपकी थी। आधी रात तक तो उनकी तलवार हरिसेवक पर खिंची रही; इसी बुड्ढे खूसट के कुप्रबन्ध ने यह सारा तूफान खडा किया। उसके बाद तलवार के वार अपने ऊपर होने लगे। मुझे इस उत्सव की ज़रूरत ही क्या थी? रियासत मुझे मिल ही चुकी थी। टीके-तिलक की हिमाकत मे क्यों पडा। पिछले पहर क्रोध ने फिर पहलू बदला और तलवार की चोटें चक्रधर पर पडने लगी। यह सारी शरारत इसी लौंडे की है। न्याय, धर्म और परोपकार सब बहुत अच्छी बातें हैं, लेकिन हरएक काम के लिए एक अवसर होता है। इसी ने प्रजा में असन्तोष की आग भड़काई। दो-चार दिन आधे ही पेट खाकर रह जाते, तो क्या मज़दूरो की जान निकल जाती? अपने घर ही पर उन्हें कौन दोनो वक्त पकवान मिलता है। जब बारहों मास एक वक्त और आधे पेट खाकर रहते है, तो यहाँ रसद के लिए दगा कर बैठना साफ़ बतला रहा है कि यह दूसरों का मन्त्र था। बाप तो तलुए सुहलाता फिरता है और आप परोपकारी बने फिरते हैं। पाँच साल तक चक्की न पिसवाई, तो नाम नहीं!

राज-भवन मे सन्नाटा छाया हुआ था। रोहिणी ने तो जन्माष्टमी के दिन ही से राजा साहब से बोलना-चालना छोड दिया था। यों पडी रहती थी, जैसे कोई चिडिया पिंजरे मे। वसुमती को अपनी पूजा-पाठ से फुरसत न थी। अब उसे राम और कृष्ण दोनो ही की पूजा-अर्चना करनी पडती थी। केवल रामप्रिया घबराई हुई इधर-उधर दौड रही थी। कभी चुपके-चुपके कोप-भवन के द्वार तक जाती, कभी खिडकी से झाँकती, पर राजा साहब की त्योरियाँ देखकर उलटे पाँव लौट आती। डरती थी कि कही वह कुछ खा न लें, कहीं भाग न जायें। निर्बल क्रोध ही तो वैराग्य है।

वह इसी चिंता में विकल थी कि मनोरमा आकर सामने खड़ी हो गई। उसकी दोनो आँखें बीरबहूटी हो रही थीं, भवें चढ़ी हुई। मानो किसी गुण्डे ने सती को छेड़ दिया हो।

रामप्रिया ने पूछा—कहाँ थी मनोरमा?

मनोरमा—ऊपर ही तो थी। राजा साहब कहाँ हैं?

रामप्रिया ने मनोरमा के मुख की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। हृदय आँखो में रो रहा था। बोली—क्या करोगो पूछकर?

मनोरमा—उनसे कुछ कहना चाहती हूँ।

रामप्रिया—कहीं उनके सामने जाना मत। कोप-भवन मे है। मैं तो खुद उनके सामने जाते डरती हूँ।

मनोरमा—आप बतला तो दें।

रामप्रिया—नहीं, मै न बतलाऊँगी। कौन जानता है, इस वक्त उनके हृदय पर क्या बीत रही है। खून का घूँट पी रहे होगे। सुनती हूँ, तुम्हारे गुरुजी ही की यह सारी करामात है। देखने में तो बड़े ही सज्जन मालूम होते हैं; पर हैं एक ही छुटे हुए!

मनोरमा तीर की भाँति कमरे से निकलकर वसुमती के पास जा पहुँची। वसुमती अभी स्नान करके आई थी और पूजा करने जा रही थी कि मनोरमा को सामने देखकर चौक पड़ी। मनोरमा ने पूछा—आप जानती हैं राजा साहब कहाँ है?

वसुमती ने रुखाई से कहा—होगे जहाँ उनकी इच्छा होगी। मैं तो पूछने भी न गई। जैसे राम राधा से, वैसे ही राधा राम से!

मनोरमा—आपको मालूम नहीं?

वसुमती—मैं होती कौन हूँ। न सलाह मे, न बात में। बेगानों की तरह घर मे पड़ी दिन काट रही हूँ। वह रानी बैठी हुई है। उनसे पूछो, जानती होंगी।

मनोरमा रोहिणी के कमरे में आई। वह गाव-तकिये लगाये, ठस्से से मसनद पर बैठी हुई थी। सामने आइना था। नाइन केश गूँथ रही

थी। मनोरमा को देखकर मुसकराई। पूछा—कैसे चलीं ?

मनोरमा—आपको मालूम है, राजा साहब इस वक्त कहाँ मिलेंगे ? मुझे उनसे कुछ कहना है।

रोहिणी—कहीं बैठे अपने नसीबों को रो रहे होंगे। यह सब मेरी हाय का फल है! कैसा तमाचा पड़ा है कि याद ही करते होंगे। ईश्वर बड़ा न्यायी है। मैंने तो चिन्ता करना ही छोड़ दी। ज़िन्दगी रोने ही के लिए थोड़े ही है। सच पूछो तो इतना सुख मुझे कभी न था। घर में आग लगे या वज्र गिरे, मेरी बला से!

मनोरमा—मुझे इतना बता दीजिये, वह कहाँ हैं ?

रोहिणी—मेरे हृदय में! उसे बाणों से छेद रहे हैं।

मनोरमा निराश होकर यहाँ से भी निकली। वह इस राज-भवन में पहले ही पहल आई थी। अन्दाज़ से दीवानखाने की तरफ़ चली। जब रानियों के यहाँ नहीं हैं, तो अवश्य दीवानखाने में होंगे। द्वार पर पहुँचकर वह ज़रा ठिठक गई। झाँककर अन्दर देखा, राजा साहब कमरे में टहलते थे और मूँछें ऐंठ रहे थे। मनोरमा अन्दर चली गई। पछताई कि व्यर्थ रानियों से पूछती फिरी।

राजा साहब उसे देखकर चौंक पड़े। कोई दूसरा आदमी होता, तो शायद वह उस पर झल्ला पड़ते, गरज उठते, निकल जाने को कहते; किन्तु मनोरमा के मान-प्रदीप सौन्दर्य ने उन्हें परास्त कर दिया। खौलते हुए पानी ने दहकती हुई आग को शान्त कर दिया। उन्होंने दो-तीन दिन पहले उसे एक बार देखा था। तब वह बालिका थी। आज वही बालिका नवयुवती हो गई थी। यह एक रात की भीषण चिन्ता, दारुण वेदना और दुस्सह ताप की सृष्टि थी। राजा साहब के सम्मुख आने पर भी उसे ज़रा भी भय या सङ्कोच न हुआ। सरोष नेत्रों से ताकती हुई बोली—उसका कण्ठ आवेश से काँप रहा था—महाराज, मैं आपसे यह पूछने आई हूँ कि क्या प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु है, या उनमें कुछ अन्तर है ?

राजा साहब ने विस्मित होकर कहा—मै तुम्हारा आशय नहीं समझा मनोरमा ! बात क्या है ? तुम्हारी त्योरियाँ चढी हुई है। क्या किसी ने कुछ कहा है, या मुझसे नाराज़ हो। यह भवें क्यों तनी हुई है ?

मनोरमा—मै आपके सामने फ़रियाद करने आई हूँ।

राजा—क्या तुम्हे किसी ने कटु वचन कहे है ?

मनोरमा—मुझे किसी ने कटु वचन कहे होते, तो फ़रियाद करने न आती। अपने लिए आपको कष्ट न देती ; लेकिन आपने अपने तिलकोत्सव के दिन एक ऐसे प्राणी पर अत्याचार किया है, जिस पर मेरी असीम भक्ति है, जिसे मै देवता समझती हूँ, जिसका हृदय कमल के जल-सिंचित दल की भाँति पवित्र और कोमल है, जिसमे सन्यासियो का त्याग और ऋषियो का सत्य है, जिसमे बालक की सरलता और योद्धाओ की वीरता है। आपके न्याय और धर्म की चर्चा उसी पुरुष के मुँह से सुना करती थी। अगर यही उसका यथार्थ रूप है, तो मुझे भय है कि इस आतंक के आधार पर बने हुए राज-भवन का शीघ्र ही पतन हो जायगा, और आपकी सारी कीर्ति स्वप्न की भाँति मिट जायगी। जिस समय आपके ये निर्दय हाथ बाबू चक्रधर पर उठे, अगर उस समय मै वहाँ होती, तो कदाचित् कुन्दे का वह वार मेरी गरदन पर पडता। मुझे आश्चर्य होता है कि उन पर आपके हाथ उठे क्योकर। उसी समय से मेरे मन मे विचार हो रहा है कि क्या प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु तो नहीं है ?

मनोरमा के मुख से ये जलते हुए शब्द सुनकर राजा साहब दङ्ग रह गये। उनका क्रोध प्रचण्ड वायु के इस झोके से आकाश पर छाये हुए मेघ के समान उड गया। आवेश मे भरी हुई सरल हृदय बालिका से वाद-विवाद करने के बदले उन्हें उस पर अनुराग उत्पन्न हो गया। सौन्दर्य के सामने प्रभुत्व भीगी बिल्ली बन जाता है। आसुरी शक्ति भी सौन्दर्य के सामने सिर झुका देती है। राजा साहब नम्रता से बोले—चक्रधर को तुम कैसे जानती हो ?

मनोरमा—वह मुझे अँगरेज़ी पढ़ाने आया करते हैं।

राजा—कितने दिनों से ?

मनोरमा—बहुत दिन हुए।

राजा—मनोरमा, मेरे दिल में बाबू चक्रधर की जितनी इज्जत थी और है, उसकी चर्चा करते हुए शर्म आती है। जब उन पर इन्हीं कठोर हाथों से मैंने आघात किया, तो अब ऐसी बातें सुनकर तुम्हें विश्वास न आयेगा। तुमने बहुत ठीक कहा है कि प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु हैं। एक वस्तु चाहे न हों, पर उनमें फूस और चिनगारी का सम्बन्ध अवश्य है। मुझे याद ही नहीं आता कि कभी मुझे इतना क्रोध आया हो। अब मुझे याद आ रहा है कि यदि मैंने धैर्य से काम लिया होता, तो चक्रधर चमारों को ज़रूर शान्त कर देते। जनता पर उसी आदमी का असर पडता है, जिसमें सेवा का गुण हो। यह उनकी सेवा ही है, जिसने उन्हें इतना सर्वप्रिय बना दिया है। अँगरेज़ों की प्राण-रक्षा करने मे उन्होंने जितनी वीरता से काम लिया, उसे अलौकिक कहना चाहिये। वह विद्रोहियों के सामने जाकर न खडे हो जाते, तो शायद इस वक्त जगदीशपुर पर गोलों की वर्षा होती और मेरी जो दशा होती उसकी कल्पना ही से रोएँ खडे होते हैं। वह वीरात्मा हैं और उनके साथ मैंने जो अन्याय किया है, उसका मुझे जीवन पर्यन्त दुःख रहेगा।

विनय क्रोध को निगल जाता है। मनोरमा शान्त होकर बोली—केवल दु.ख प्रकट करने से तो अन्याय का घाव नहीं भरता ?

राजा—क्या करूँ मनोरमा, अगर मेरे वश की बात होती, तो मैं इसी क्षण जाता और चक्रधर को अपने कंधों पर बैठाकर लाता; पर अब मेरा कुछ अख्तियार नहीं है। अगर उनकी जगह मेरा ही पुत्र होता तो भी मैं कुछ न कर सकता !

मनोरमा—आप मिस्टर जिम से तो कह सकते हैं ?

राजा—हाँ, कह सकता हूँ; पर आशा नहीं कि वह मानें। राज-

नीतिक अपराधियों के साथ यह लोग ज़रा भी रिआयत नहीं करते, उनके विषय मे कुछ सुनना ही नहीं चाहते। हाँ, एक बात हो सकती है ; अगर चक्रधरजी यह प्रतिज्ञा कर लें कि अब वह कभी सार्वजनिक कामों में भाग न लेंगे, तो शायद मिस्टर जिम उन्हें छोड दे। तुम्हें आशा है कि चक्रधर यह प्रतिज्ञा करेंगे ?

मनोरमा ने संदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा—न। मुझे इसकी आशा नहीं। वह अपनी खुशी से कभी ऐसी प्रतिज्ञा न करेंगे।

राजा—तुम्हारे कहने से मान जायेंगे ?

मनोरमा—मेरे कहने से क्या, वह ईश्वर के कहने से भी न मानेंगे और अगर मानेंगे, तो उसी क्षण मेरे आदर्श से गिर जायेंगे। मै यह कभी न चाहूँगी कि वह उन अधिकारों को छोड दें, जो उन्हें ईश्वर ने दिये है। आज के पहले मुझे उनसे वही स्नेह था, जो किसी को एक सज्जन आदमी से हो सकता है। मेरी भक्ति उन पर न थी। उनकी प्रण-वीरता ही ने मुझे उनका भक्त बना दिया है ; उनकी निर्भीकता ही ने मेरी श्रद्धा पर विजय पाई है।

राजा ने बडी दीनता से पूछा—जब यह जानती हो, तो मुझे क्यों जिम के पास भेजती हो।

मनोरमा—इसलिए कि सच्चे आदमी के साथ सच्चा बरताव होना चाहिये। किसी को उसकी सच्चाई या सज्जनता का दंड न मिलना चाहिये। इसी मे आपका भी कल्याण है। जब तक चक्रधर के साथ न्याय न होगा, आपके राज्य मे शान्ति न होगी। आपके माथे पर कलंक का टीका लगा रहेगा।

राजा—क्या करूँ मनोरमा, अच्छे सलाहकार न मिलने से मेरी यह दशा हुई। ईश्वर जानता है, मेरे मन मे प्रजा-हित के कैसे-कैसे हौसले थे। मै अपनी रियासत मे राम-राज्य का युग लाना चाहता था ; पर दुर्भाग्य से परिस्थिति कुछ ऐसी होती जाती है कि मुझे वे सभी काम करने पड रहे हैं, जिनसे मुझे घृणा थी। न-जाने वह कौन-सी

शक्ति है, जो मुझे अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करने पर मजबूर कर देती है। मेरे पास कोई ऐसा मंत्री नहीं है, जो मुझे सच्ची सलाहें दिया करे। मैं हिंसक जंतुओं से घिरा हुआ हूँ। सभी स्वार्थी हैं, कोई मेरा मित्र नहीं। इतने आदमियों के बीच में मैं अकेला, निस्सहाय, मित्र-हीन प्राणी हूँ। एक भी ऐसा हाथ नहीं, जो मुझे गिरते देखकर सँभाल ले। मैं अभी मिस्टर जिम के पास जाऊँगा और साफ़-साफ़ कह दूँगा कि मुझे बाबू चक्रधर से कोई शिकायत नहीं है।

मनोरमा के सौंदर्य ने राजा साहब पर जो जादू का-सा असर डाला था, वही असर उनकी विनय और शालीनता ने मनोरमा पर किया। सारी परिस्थिति उसकी समझ में आ गई। नरम होकर बोली—जब उनके पास जाने से आपको कोई आशा ही नहीं है, तो व्यर्थ क्यों कष्ट उठाइयेगा। मैं आपसे यह आग्रह न करूँगी। मैंने आपका इतना समय नष्ट किया, इसके लिए मुझे क्षमा कीजियेगा। मेरी कुछ बातें अगर कटु और अप्रिय लगी हों..

राजा ने बात काटकर कहा—मनोरमा, सुधा-वृष्टि भी किसी को कड़वी और अप्रिय लगती है? मैंने ऐसी मधुर वाणी कभी न सुनी थी। तुमने मुझ पर जो अनुग्रह किया है, उसे कभी न भूलूँगा।

मनोरमा कमरे से चली गई। विशालसिंह द्वार पर खड़े उसकी ओर ऐसे तृषित नेत्रों से देखते रहे, मानो उसे पी जायेंगे। जब वह आँखों से ओझल हो गई तो वह कुरसी पर लेट गये। उनके हृदय में एक विचित्र आकांक्षा अंकुरित हो रही थी।

किन्तु वह आकांक्षा क्या थी? मृग-तृष्णा! मृग-तृष्णा!

१६

सन्ध्या हो गई है। ऐसी उमस है कि साँस लेना कठिन है, और जेल की कोठरियो में यह उमस और भी असह्य हो गई है। एक भी खिड़की नही, एक भी जङ्गला नही। उस पर मच्छरों का निरन्तर गान कानों के परदे फाड़े डालता है। सब के सब दावत खाने के पहले गा-गाकर मस्त हो रहे हैं। एक आध मरभुखे पत्तलो की राह न देखकर कभी-कभी रक्त का स्वाद ले लेते हैं; लेकिन अधिकांश मण्डली उस समय का इन्तज़ार कर रही है, जब निद्रादेवी उनके सामने पत्तल रखकर कहेगी—प्यारो, खाओ जितना खा सको; पियो, जितना पी सको। रात तुम्हारी है और भण्डार भरपूर!

यही एक कोठरी में चक्रधर को भी स्थान दिया गया है। स्वाधीनता की देवी अपने सच्चे सेवकों को यही पद प्रदान करती है।

वह सोच रहे हैं—यह भीषण उत्पात क्यो हुआ? हमने तो कभी भूलकर भी किसी से यह प्रेरणा नहीं की। फिर लोगों के मन मे यह बात कैसे समाई? इस प्रश्न का उन्हें यही उत्तर मिल रहा है कि यह हमारी नीयत का नतीजा है। हमारी शान्ति-शिक्षा की तह मे द्वेष छिपा हुआ था। हम भूल गये थे कि संगठित शक्ति आग्रहमय होती है। वह अत्याचार से उत्तेजित हो जाती है। अगर हमारी नीयत साफ़ होती, तो जनता के मन में कभी राजाओ पर चढ दौड़ने का आवेश न होता; लेकिन क्या जनता राजाओं के कैम्प की तरफ़ न जाती, तो पुलिस उन्हें बिना रोक-टोक अपने घर जाने देती? कभी नही। सवार के लिए घोड़े का अड़ जाना या बिगड़ जाना एक बात है। जो छेड़-छेड़कर लड़ना चाहे उससे कोई क्योंकर बचे? फिर अगर प्रजा अत्याचार का विरोध न करे, तो उसके संगठन से फ़ायदा ही क्या? इसी लिए तो उसे सारे उपदेश दिये जाते हैं। कठिन समस्या है। या तो प्रजा को उनके हाल पर छोड़ दूँ, उन पर कितने ही ज़ुल्म हों, उनके

निकट न जाऊँ ; या ऐसे उपद्रवों के लिए तैयार रहूँ। राज्य पशु-बल का प्रत्यक्ष रूप है। वह साधु नहीं है जिसका बल धर्म है ; वह विद्वान् नहीं है, जिसका बल तर्क है। वह सिपाही है जो डण्डे के ज़ोर से अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। इसके सिवा उसके पास कोई दूसरा साधन ही नहो।

यह सोचते-सोचते उन्हें अपना ख़याल आया। मै तो कोई आन्दोलन नहीं कर रहा था। किसी को भडका नहीं रहा था। जिन लोगो की प्राण रक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाली, वही मेरे साथ यह सलूक कर रहे हैं। इतना भी नहीं देख सकते कि जनता पर किसी का असर हो। उनकी इच्छा इसके सिवा और क्या है कि सभी आदमी अपनी-अपनी आँखें बन्द कर रखे, उन्हें अपने आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ देखने का हक नहीं। अगर सेवा करना पाप है, तो यह पाप तो मैं उस वक्त तक करता रहूँगा, जब तक प्राण रहेंगे। जेल की क्या चिन्ता ! सेवा करने के लिए सभी जगह मौके है। जेल मे तो और भी ज्यादा। लालाजी को दु ख होगा, अम्माँजी रोयेंगी ; लेकिन मजबूरी है। जब बाहर भी ज़बान और हाँथ-पाँव बाँधे जायँगे, तो जैसे जेल वैसे बाहर। वह भी जेल ही है। हाँ, ज़रा उसका विस्तार अधिक है। मै किसी तरह की प्रतिज्ञा नही कर सकता।

वह इसी सोच-विचार में पडे हुए थे कि एकाएक मुंशी वज्रधर कमरे में दाख़िल हुए। उनकी देह पर एक पुरानी अचकन थी, जिसका मैल उसके असली रङ्ग को छिपाये हुए था। नीचे एक पतलून था, जो कमरबन्द न होने के कारण खिसककर इतना नीचा हो गया था कि घुटनो के नीचे एक झोला-सा पड गया था। संसार मे कपडे से ज्यादा बेवफ़ा और कोई वस्तु नहीं होती। हमारा घर बचपन से बुढ़ापे तक हर एक अवस्था में हमारा है। वस्त्र हमारा होते हुए भी हमारा नहीं रहता। आज जो वस्त्र हमारा है, वह कल हमारा न रहेगा। उसे हमारे सुख-दुःख की ज़रा भी चिन्ता नहीं होती, फौरन बेवफ़ाई कर

जाता है। हम ज़रा बीमार हो जायँ, किसी स्थान का जल-वायु ज़रा हमारे अनुकूल हो जाय, बस हमारे प्यारे वस्त्र, जिनके लिए हमने दर्ज़ी की दूकान की खाक छान डाली थी, हमारा साथ छोड देते हैं। उन्हें लाख अपना बनाओ, अपने नहीं होते। अगर ज़बरदस्ती गले लगाओ, तो चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं, हम तुम्हारे नहीं। वे केवल हमारी पूर्वावस्था के चिन्ह होते हैं। मुन्शी वज्रधर की अचकन भी, जो उनकी अल्पकालीन लेकिन ऐतिहासिक तहसीलदारी की यादगार थी, पुकार-पुकार कर कहती थी—मै अब इनकी नहीं; किन्तु तहसीलदार साहब हुकूमत के ज़ोर से उसे गले से चिपटाये हुए थे। तुम कितनी ही बेवफ़ाई करो, मेरी कितनी ही बदनामी करो, छोडने का नही। अच्छे दिनो मे तो तुमने हमारे साथ चैन किये। इन बुरे दिनों मे तुम्हें क्यो छोड़ूँ। यों भूत और वर्तमान के संग्राम की मूर्ति बने हुए तहसीलदार साहब चक्रधर के पास जाकर बोले—क्या करते हो बेटा, यहाँ तो बडा अँधेरा है। चलो, बाहर इक्का खडा है। बैठ लो। इधर ही से साहब के बँगले पर होते चलेगे। जो कुछ वह कहें लिख देना। बात ही कौन-सी है। हमे कौन किसी से लडाई करनी है। कल ही से दौड लगा रहा हूँ। बारे आज दोपहर को जाके सीधा हुआ। पहले बहुत यों-वो करता रहा; लेकिन मैंने पिड न छोडा। मेम साहब के पास पहुँचकर रोने लगा। इस फन में तुम जानो उस्ताद हूँ। सरकारी मुलाजिमत और वह भी तहसीलदारी सब कुछ सिखा देती है। अँगरेज़ो को तो तुम जानते ही हो, मेमों के गुलाम होते हैं। मेम ने जाकर हजरत को डाटा—क्यो तहसीलदार साहब को दिक कर रहे हो? अभी इनके लडके को छोड दो, नही तो घर से निकल जाओ। यह डाट पडी, तो हज़रत के होश ठिकाने हुए। बोले—वेल तहसीलदार साहब, हम आपका बहुत इज्जत करता है। आपको हम नाउम्मेद नही करना चाहता; लेकिन जब तक आपका लडका इस बात का कौल न करे कि वह फिर कभी गोलमाल न करेगा, तब तक हम

उसे नहीं छोड सकता। हम अभी जेलर को लिखता है कि उससे पूछो, राजी है? मैंने कहा—हुजूर, मैं खुद जाता हूँ और उसे हुजूर की खिदमत में लाकर हाज़िर करता हूँ। या वहाँ न चलना चाहो, तो यहीं एक हलफ़नामा लिख दो। देर करने से क्या फ़ायदा। तुम्हारी अम्माँ रो-रोकर जान दे रही हैं।

चक्रधर ने सिर नीचा करके कहा—अभी तो मैंने कुछ निश्चय नही किया। सोचकर जवाब दूँगा। आप नाहक इतने हैरान हुए।

वज्रधर—कैसी बातें करते हो बेटा, यहाँ नाक कटी जा रही है, घर से निकलना मुश्किल हो गया है और तुम कहते हो—सोचकर जवाब दूँगा। इसमें सोचने की बात ही क्या है? इस तहसीलदारी की लाज तो रखनी है। की तो थोडे ही दिन, लेकिन आज तक लोग याद करते हैं और हमेशा याद करेंगे। कोई हाकिम इलाके में आया नहीं कि उससे मिलने दौडा। रसद के ढेर लगा देता था। हाकिमो के नौकर-चाकर तक खाते-खाते ऊब जाते थे। जमींदारों की तो मेरे नाम से जान निकल जाती थी। जिम साहब ने मेरी तारीफी चिट्ठियाँ पढी, तो दङ्ग रह गये। इस इज्जत को तो निभाना ही पडेगा। चलो, हलफ़नामा लिख दो। घर मे कल से आग नही जली!

चक्रधर—मेरी आत्मा किसी तरह अपने पाँव मे बेडियाँ डालने पर राज़ी नहीं होती।

वज्रधर—मौक़ा देखकर सब कुछ किया जाता है बेटा! दुनिया मे कोई किसी का नही होता। यही राजा साहब पहले तुमसे कितनी मुहब्बत से पेश आते थे। जब अपने सिर पर पडी, तो कैसे सारी बला तुम्हारे सिर ठेलकर निकल गये। दीवान साहब का लडका गुरुसेवक पहले जाति के पीछे कैसा लट्ठ लिये फिरता था। कल डिप्टी कलक्टरी में नामज़द हो गया। कहाँ तो हमसे हमदर्दी करता था, कहाँ अब विद्रोहियों के ख़िलाफ़ जलसा करने के लिए दौड-धूप कर रहा है। जब सारी दुनिया अपना मतलब निकालने की धुन

मे है, तो तुम्हीं दुनिया की फिक्र मे क्यो अपने को बरबाद करो। दुनिया जाय जहन्नुम मे। हमें अपने काम से काम है या दुनिया के झगडो से?

चक्रधर—अगर और लोग अपने मतलब के बन्दे हो जायँ और स्वार्थ के लिए अपने सिद्धान्तो से मुँह मोड बैठें, तो कोई वजह नहीं कि मै भी उन्हीं की नकल करूँ। मै ऐसे लोगों को अपना आदर्श नहीं बना सकता। मेरे आदर्श इनसे बहुत ऊँचे है।

वज्रधर—बस, तुम्हारी इसी ज़िद पर मुझे गुस्सा आता है। मैंने भी अपनी जवानी मे इस तरह के खिलवाड किये है, और उन लोगों को कुछ-कुछ जानता हूँ, जो अपने को जाति के सेवक कहते है। बस, मुँह न खुलवाओ। सब अपने-अपने मतलब के बन्दे है, दुनिया को लूटने के लिए यह सारा स्वाँग फैला रखा है। हाँ, तुम्हारे-जैसे दो-चार उल्लू भले ही फस जाते है, जो अपने को तबाह कर डालते है। मै तो सीधी-सी बात जानता हूँ—जो अपने घरवालों की सेवा न कर सका, वह जाति की सेवा कभी कर ही नही सकता; घर सेवा की सीढी का पहला डण्डा है। इसे छोडकर तुम ऊपर नही जा सकते।

चक्रधर जब अब भी प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने पर राजी न हुए, तो मुन्शीजी निराश होकर बोले—अच्छा बेटा, लो अब कुछ न कहेंगे। जो तुम्हारी खुशी हो, वह करो। मै तो जानता था कि तुम जन्म के ज़िद्दी हो, मेरी एक न सुनोगे, इसी लिए आता ही न था; लेकिन तुम्हारी माता ने मुझे कुरेद-कुरेदकर भेजा। कह दूँगा, नही आता। सब कुछ कहके हार गया, सब्र करके बैठो, उसे अपनी बात और अपनी शान मा-बाप से प्यारी है। जितना रोना हो, रो लो।

कठोर से कठोर हृदय मे भी मातृ-स्नेह की कोमल स्मृतियाँ सञ्चित होती है। चक्रधर कातर होकर बोले—आप माताजी को समझाते रहियेगा, कह दीजियेगा, मुझे जरा भी तकलीफ नही है, मेरे लिए रंज न करें।

वज्रधर ने इतने दिनों तक यों ही तहसीलदारी न की थी। ताड़ गये कि अबकी निशाना ठीक पड़ा। बेपरवाई से बोले—मुझे क्या ग़रज पड़ी है कि किसी के लिए झूठ बोलूँ। बिना किसी मतलब के झूठ बोलना मेरी नीति नहीं। जो आँखों से देख रहा हूँ वही कहूँगा। रोयेंगी, रोयें, इसमें मेरा क्या अख्तियार है। रोना तो उनकी तक़दीर ही में लिखा है। जब से तुम आये हो, एक घूँट पानी तक मुँह में नहीं डाला। इसी तरह दो-चार दिन और रहीं, तो प्राण निकल जायेंगे। तुम्हारे सिर का बोझ टल जायगा। यह लो, वार्डर मुझे बुलाने आ रहा है। वक्त पूरा हो गया।

चक्रधर ने दीन भाव से कहा—अम्माँजी को एक बार यहाँ न लाइयेगा।

वज्रधर—तुम्हें इस दशा में देखकर तो उन्हें जो दो-चार दिन जीना है, वह भी न जियेंगी। क्या कहते हो, इकरारनामा लिखना हो, तो मेरे साथ दफ़्तर में चलो।

चक्रधर करुणा से विह्वल हो गये। बिना कुछ कहे हुए मुंशीजी के साथ दफ़्तर की ओर चले। मुंशीजी के चेहरे की झुर्रियाँ एक क्षण के लिए मिट गईं। चक्रधर को गले लगाकर बोले—जीते रहो बेटा, तुमने मेरी बात मान ली। इससे बढ़कर और क्या खुशी की बात होगी।

दोनों आदमी दफ़्तर में आये, तो जेलर ने कहा—कहिये तहसीलदार साहब, आपकी हार हुई न? मैं कहता न था, वह न सुनेंगे। आजकल के नौजवान अपनी बात के आगे किसी की नहीं सुनते।

वज्रधर—ज़रा क़लम-दावात तो निकालिये, फिर बातें होंगी।

दारोगा—(चक्रधर से) क्या आप इकरारनामा लिख रहे हैं? निकल गई सारी शेख़ी! इसी पर इतनी दून की लेते थे?

चक्रधर पर घड़ों पानी पड़ गया। मन की अस्थिरता पर लज्जित हो गये। जाति-सेवकों से सभी दृढ़ता की आशा रखते हैं, सभी उसे आदर्श पर बलिदान होते देखना चाहते हैं। जातीयता के क्षेत्र में आते

ही उसके गुणों की परीक्षा अत्यन्त कठोर नियमों से होने लगती है और दोषों की सूक्ष्म नियमों से। परले सिरे का कुचरित्र मनुष्य भी साधु-वेष रखनेवालों से ऊँचे आदर्श पर चलने की आशा रखता है, और उन्हें आदर्श से गिरते देखकर उनका तिरस्कार करने मे संकोच नहीं करता। जेलर के कटाक्ष ने चक्रधर की झपकी हुई आँखें खोल दी। तुरन्त उत्तर दिया—मैं ज़रा वह प्रतिज्ञा-पत्र देखना चाहता हूँ।

तहसीलदार साहब ने जेलर की मेज पर से वह कागज़ उठा लिया और चक्रधर को दिखाते हुए बोले—बेटा, इसमें कुछ नही है। जो कुछ मैं कह चुका हूँ, वही बातें ज़रा कानूनी ढंग से लिखी गई हैं।

चक्रधर ने काग़ज़ को सरसरी तौर से देखकर कहा—इसमे तो मेरे लिए कोई जगह ही नही रही। घर पर कैदी बना बैठा रहूँगा। मेरा ऐसा ख़याल न था। अपने हाथों अपने पाँव मे बेड़ियाँ न डालूँगा। जब कैद ही होना है, तो कैदख़ाना क्या बुरा है? अब या तो अदालत से बरी होकर आऊँगा, या सज़ा के दिन काटकर।

यह कहकर चक्रधर अपनी कोठरी मे चले आये और एकांत में खूब रोये। आँसू उमड रहे थे; पर जेलर के सामने कैसे रोते।

एक सप्ताह के बाद मिस्टर जिम के इजलास मे मुकदमा चलने लगा। तहसीलदार साहब ने न कोई वकील खडा किया, न अदालत में आये। यहाँ तो गवाहो के बयान होते थे, और वह सारे दिन जिम के बँगले पर बैठे रहते थे। साहब बिगडते थे, धमकाते थे; पर वह उठने का नाम न लेते। जिम जब बँगले से निकलते, तो द्वार पर मुंशीजी खडे नज़र आते थे। कचहरी से आते, तो भी उन्हें वही खडा पाते। मारे क्रोध के लाल हो जाते। दो-एक बार घूँसा भी ताना, लेकिन मुंशीजी को सिर नीचा किये देख दया आ गई। अक्सर वह साहब के दोनो बच्चों को खेलाया करते, कंधे पर लेकर दौडते, मिठाइयाँ ला-लाकर खिलाते और मेम साहब को हँसानेवाले लतीफे सुनाते।

आख़िर एक दिन साहब ने पूछा—तुम मुझसे क्या चाहता है?

वज्रधर ने अपनी पगड़ी उतारकर साहब के पैरों पर रख दी और हाथ जोड़कर बोले—हुज़ूर सब जानते हैं, मैं क्या अर्ज़ करूँ। सरकार की खिदमत में सारी उम्र कट गई। मेरे देवता तो, ईश्वर तो, जो कुछ है आप ही हैं। आपके सिवा मैं और किसके द्वार पर जाऊँ? किसके सामने रोऊँ? इन पके बालों पर तरस खाइये। मर जाऊँगा हुज़ूर, इतना बड़ा सदमा उठाने की ताक़त अब नहीं रही!

जिम—हम छोड़ नहीं सकता, किसी तरह नहीं!

वज्रधर—हुज़ूर जो चाहें करें। मेरा तो आपसे कहने ही भर का अख्तियार है। हुज़ूर को दुआ देता हुआ मर जाऊँगा; पर दामन न छोड़ूँगा।

जिम—तुम अपने लड़के को क्यों नहीं समझाता?

वज्रधर—हुज़ूर नाखलफ़ है, और क्या कहूँ। खुदा सतावें दुश्मन को भी ऐसी औलाद न दे। जी तो यही चाहता है हुज़ूर कि कम्बख्त का मुँह न देखूँ; लेकिन कलेजा नहीं मानता। हुज़ूर, माँ-बाप का दिल कैसा होता है, इसे तो हुज़ूर भी जानते हैं।

अदालत में रोज़ खासी भीड़ हो जाती। वे सब मजदूर, जिन्होंने हड़ताल की थी, एक बार चक्रधर के दर्शनों को आ जाते; अगर चक्रधर को छोड़ने के लिए एक सौ आदमियों की ज़मानत माँगी जाती तो उसके मिलने में बाधा न होती। सब जानते थे कि इन्हें हमारे ही पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है। शहर से भी हजारों आदमी आ पहुँचते थे। कभी-कभी राजा विशालसिंह भी आकर दर्शकों की गैलरी में बैठ जाते; लेकिन और कोई आये या न आये, सवेरे आये या देर को आये; किन्तु मनोरमा रोज़ ठीक दस बजे कचहरी में आ जाती और अदालत के उठने तक अपनी जगह पर मूर्ति की भाँति बैठी रहती। उसके मुख पर अब वह पहले की अरुण आभा, वह चञ्चलता, वह प्रफुल्लता नहीं है। इसकी जगह दृढ़ संकल्प, विशाल करुणा, अलौकिक धैर्य और गहरी चिंता का फीका रङ्ग छाया हुआ है, मानो कोई विरा-

गिनी है, जिसके मुख पर हास्य की मृदु रेखा कभी खिंची ही नहीं। वह न किसी से बोलती है, न मिलती है, उसे देखकर सहसा कोई यह नहीं कह सकता कि यह वही आमोद-प्रिय बालिका है, जिसकी हँसी दूसरों को हँसाती थी।

वहाँ बैठी हुई मनोरमा कल्पनाओं का संसार रचा करती है। उस संसार में प्रेम ही प्रेम है, आनन्द ही आनन्द है। उसे अनायास कहीं से अतुल धन मिल जाता है, कदाचित् कोई देवी प्रसन्न हो जाती है। इस विपुल धन को वह चक्रधर के चरणों पर अर्पण कर देती है; फिर वही देवी उसे किसी देश की रानी बना देती है। किन्तु चक्रधर उसके राजा नहीं होते, वह अब भी उसके आश्रयी ही रहते हैं। उन्हें आश्रय देने ही के लिए वह रानी बनती है, अपने लिए वह कोई मंसूबे नहीं बाँधती, जो कुछ सोचती है चक्रधर के लिए। चक्रधर से उसे प्रेम नहीं है, केवल भक्ति है। चक्रधर को वह मनुष्य नहीं, देवता समझती है।

संध्या का समय था। आज पूरे १५ दिनों की कार्रवाई के बाद मिस्टर जिम ने दो साल की कैद का फैसला सुनाया था। यह कम से कम सज़ा थी जो उस धारा के अनुसार दी जा सकती थी।

चक्रधर हँस-हँसकर मित्रों से बिदा हो रहे थे। सब की आँखों में जल भरा हुआ था। मज़दूरों का दल इजलास के द्वार पर खड़ा 'जय-जय' का शोर मचा रहा था। कुछ स्त्रियाँ खड़ी रो रही थीं। सहसा मनोरमा आकर चक्रधर के सम्मुख खड़ी हो गई। उसके हाथ में फूलों का एक हार था। वह उसने उनके गले में डाल दिया और बोली—अदालत ने तो आपको सज़ा दे दी; पर इतने आदमियों में एक भी ऐसा न होगा, जिसके दिल में आप से सौगुना प्रेम न हो गया हो। आपने हमें सच्चे साहस, सच्चे आत्म-बल और सच्चे कर्तव्य का रास्ता दिखा दिया। जाइये, जिस काम का बीड़ा उठाया है उसे पूरा कीजिये, हमारी शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं।

उसने इसी अवसर के लिए कई दिन से ये वाक्य रच रखे थे। इस भाँति उद्‌गारों को न बाँध रखने से वह आवेश में न जाने क्या कह जाती।

चक्रधर ने केवल दबी आँखों से मनोरमा को देखा, कुछ बोल न सके। उन्हें शर्म आ रही थी कि लोग दिल में क्या ख़याल कर रहे होंगे। सामने राजा विशालसिंह, दीवान साहब, ठाकुर गुरुसेवक और मुन्शी वज्रधर खड़े थे। बरामदे में हज़ारों आदमियों की भीड़ थी। धन्यवाद के शब्द उनकी ज़बान पर आकर रुक गये। वह दिखाना चाहते थे कि मनोरमा की यह वीर-भक्ति उसकी बाल-क्रीड़ामात्र है।

एक क्षण में सिपाहियों ने चक्रधर को एक बन्द गाड़ी में बिठा दिया और जेल की ओर चले। धीरे-धीरे कमरा खाली हो गया। मिस्टर जिम ने भी चलने की तैयारी की। तहसीलदार साहब के सिवा अब कमरे में और कोई न था। जब जिम कटघरे से नीचे उतरे, तो मुंशीजी आँखों में आँसू भरे उनके पास आये और बोले— मिस्टर जिम, मैं तुम्हें आदमी समझता था; पर तुम पत्थर निकले। मैंने तुम्हारी जितनी खुशामद की, उतनी अगर ईश्वर की करता, मोक्ष पा जाता। मगर तुम न पसीजे, न पसीजे। रिआया का दिल यों मुट्ठी में नहीं आता। यह धाँधली उसी वक्त तक चलेगी, जब तक यहाँ के लोगों की आँखें बन्द हैं। यह मज़ा बहुत दिनों तक न उठा सकोगे।

यह कहते हुए मुंशीजी कमरे से बाहर चले आये। जिम ने कुपित नेत्रों से देखा; पर कुछ बोला नहीं।

चक्रधर जेल पहुँचे, तो शाम हो गई थी। जाते ही जाते उनके कपड़े उतार लिये गये और जेल के वस्त्र मिले। लोटा और तसला भी दिया गया। गरदन में लोहे का नम्बर डाल दिया गया। चक्रधर जब ये कपड़े पहनकर खड़े हुए, तो उनके मुख पर विचित्र शान्ति की झलक दिखाई दी, मानो किसी ने जीवन का तत्त्व पा लिया हो। उन्होंने वही किया, जो उनका कर्तव्य था और कर्तव्य का पालन ही चित्त की शान्ति का मूल मंत्र है।

रात को जब वह लेटे, तो मनोरमा की सूरत आँखों के सामने फिरने लगी। उसकी एक-एक बात याद आने लगी और हर बात में कोई न कोई गुप्त आशय भी छिपा हुआ मालूम होने लगा; लेकिन इसका अन्त क्या? मनोरमा, तुम क्यों मेरे झोपड़े में आग लगाती हो? तुम्हें मालूम है, तुम मुझे किधर खींचे लिये जाती हो? ये बातें कल तुम्हें भूल जायँगी। किसी राजा-रईस से तुम्हारा विवाह हो जायगा, फिर मुझे भूलकर भी याद न करोगी। देखने पर शायद पहचान भी न सको। मेरे हृदय में क्यों अपने खेल के घरौंदे बना रही हो। तुम्हारे लिए जो खेल है, वह मेरे लिए मौत है। मैं जानता हूँ, यह तुम्हारी बाल-क्रीड़ा है; लेकिन मेरे लिए वह आग की चिनगारी है। तुम्हारी आत्मा कितनी पवित्र है, हृदय कितना सरल! धन्य होंगे उसके भाग्य, जिसकी तुम हृदयेश्वरी बनोगी; मगर इस अभागे को कभी अपनी सहानुभूति और सहृदयता से वंचित मत करना। मेरे लिए इतना ही बहुत है।